ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शांतिधर्मी

अप्रैल, 2014

₹10

पूर्णांक 183

आर्यसमाज जंगीगंज, संत रविदास नगर भदौही का वार्षिकोत्सव ४ से ७ मार्च तक मनाया गया। सम्बोधित करते आचार्य आनन्द पुरुषार्थी व उपस्थित जनसमूह।

वेद प्रचार मण्डल जिला जीन्द द्वारा स्थानीय झांझ गेट पर नवसम्वत् की पूर्व संध्या पर आयोजित भव्य कार्यक्रम में उपस्थिति। यह कार्यक्रम आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के महामंत्री मा. रामपाल दहिया की अध्यक्षता में मनाया गया।

आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर में नवसम्वत्सर व आर्य समाज स्थापना दिवस समारोह में यज्ञ करते हुए सदस्यगण। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि स्वतंत्रता सेनानी स्वामी कर्मवेश जी थे।

एच सी टी एम जिला स्तरीय व्याकरण प्रतियोगिता में पुरस्कृत नव प्रगति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय डाहौला के विद्यार्थी प्राचार्य अजीतकुमार गौतम और अध्यापकों के साथ। इस प्रतियोगिता में ग्यारहवीं कक्षा की छात्र रीना ने द्वितीय स्थान प्राप्त कर विद्यालय का नाम रोशन किया।

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शान्तिधर्मी

अप्रैल २०१४

वर्ष : १६ अंक : ३ चैत्र २०७१ विक्रमी
स ष्टि संवत्-१६६०८५३११५, दयानन्दाब्द : १६२

सम्पादक : चन्द्रभानु आर्य
(चलभाष ०८०५६६-६४३४०)
संयुक्त सम्पादक : सहदेव समर्पित
(चलभाष ०६४१६२-५३८२६)
उपसम्पादक : सत्यसुधा शास्त्री
प्रबंध संपादक : सुभाष श्योराण
आदरी सम्पादक : यज्ञदत्त आर्य
सह-सम्पादक : राजेशार्य आट्टा
डॉ० विवेक आर्य
नरेश सिहाग बोहल
सहयोग : आचार्य आनन्द पुरुषार्थी
श्रीपाल आर्य, बागपत
महेश सोनी, बीकानेर
भलेराम आर्य, सांघी
कर्मवीर आर्य, रेवाड़ी
विधि परामर्शक : जगरूपसिंह तंवर
कार्यालय व्यवस्थापक : रविन्द्रकुमार आर्य
कम्प्यूटर सज्जा : बिशम्बर तिवारी

मूल्य
एक प्रति : १०.०० रु.
वार्षिक : १००.०० रु.
आजीवन : १०००.०० रु.

कार्यालय :
७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक,
जीन्द–१२६१०२ (हरियाणा)
दूरभाष : ६४१६२–५३८२६
ई-मेल-shantidharmijind@gmail.com

प्रेरणा स्तम्भ

जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है।

–स्वामी दयानन्द

क्या? कहाँ?....

आलेख
आत्म चिन्तन : झूठ का मकड़जाल ८
डॉ० रामविलास शर्मा का आक्रमण ६
बाबा साहेब के विचारों का अध्ययन जरूरी ११
वेदों में व्यक्तिवाद व समाजवाद का उत्तम समन्वय १३
समय के अंधेरों में खो गई बलिदान गाथा १६
ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने से मिलेगी शांति २०
महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की प्रक्रिया २२
सस्ता भी उपयोगी भी कद्दू (स्वास्थ्य चर्चा) २५
सर्वप्रथमा जानें दृश्य जगत् (स्वाध्याय सार) २८
बिखरते मानवीय मूल्य : जिम्मेवार कौन! (अन्ततः) ३४
कहानी/प्रसंग : दीक्षा : १८, उपदेश का लाभ-२७,
राजा की उदारता- २७
कविताएँ- १७, २१
स्तम्भ-आपकी सम्मतियाँ ५, अनुशीलन, सोम सरोवर ६
चाणक्य नीति, अमृतवचनावली ७, सीख हम सीखें युगों से-८,
बाल वाटिका २६, समाचार सूचनाएँ

वेद-विचार

सामवेद आग्नेय पर्व

पद्यानुवाद : स्व० आचार्य विद्यानिधि शास्त्री

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतीषिं बिभ्रते न वेधसे।।६८

बल के पुत्र वेद विद्या के निधि धन के स्वामी भगवन्!
हमको बहुत अन्न यश वैभव गोदुग्धादिक दो भगवन्!!
कीर्ति तुम्हारी गावें पावें हम तेजस्वी बल भगवन्!
जग में जगमग हों शुभ मग[१] में पग रख हर्षावें भगवन्!!

पदार्थ : १=मार्ग

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

सुख का मूल धर्म

❒चन्द्रभानु आर्य

शास्त्र में कहा है- सुखस्य मूलं धर्मः। सुख का मूल धर्म है। आज के युग में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो यह सोचते हैं कि वे धर्म का पालन करते हैं। फिर भी संसार में दुःखों की अधिकता दिखाई देती है। धर्म के नाम पर अधिकतर मत मतान्तर तो इसी आधार पर चल रहे हैं कि वे लोगों के जीवन से तनाव, दुःख दूर करते हैं। धर्म का पालन करने से सुख होता ही होता है। शास्त्र की बात असत्य नहीं हो सकती। पर फिर भी दुःख दूर नहीं हो रहे हैं तो कहीं न कहीं कमी अवश्य है। या तो जिसे मनुष्य धर्म समझकर पालन कर रहा है, वह धर्म नहीं है या फिर धर्म का पालन करने में कोई न्यूनता रह गई है।

धर्म के बारे में सीधा सीधा कह दिया कि जिससे इस लोक में और परलोक में सब सिद्धियाँ/ सफलताएँ प्राप्त हों वह धर्म है। परलोक तो परोक्ष है। इस जीवन में भी धर्म का पालन करने से कोई सुधार नहीं आया तो समझ लेना चाहिए कि धर्म का पालन नहीं हो रहा है। जिसे धर्म समझा जा रहा है वह कुछ और ही है। कुछ लोगों के लिए धर्म केवल दूसरों से लड़ने का माध्यम भर रह गया है, जिसका राजनीति के लोग लाभ उठाते हैं। दूसरों की सहायता आदि-- जिन्हें सामान्य रूप से धर्म कह दिया जाता है, वे धर्म से सम्बन्धित कार्य हैं। देना कार्य है, दान की भावना को आत्मसात् कर लेना धर्म है।

यदि सुख पाना है तो धर्म को अपने अन्दर धारण करना होगा। धर्म का पालन करने के बाद तो उसका फल सुख के रूप में मिलता ही है, पालन करते करते ही हमें यह अनुभव हो जाता है कि हम ठीक कर रहे हैं, और यह 'स्वाहा' का सुख- कि सब ठीक हो गया, कोई छोटा सुख नहीं है। हम कोई व्यवापार करते हैं तो उसमें कभी लाभ भी हो जाता है कभी हानि भी। जब लाभ मिलता है तो हमें सुख मिलता है, हानि होती है तो हम दुःखी होते हैं। पर यह धर्म का आचरण ऐसा है कि इसमें हानि तो कभी होती ही नहीं है। एक सामान्य व्यापारी, संभव है ज्यादा कमाकर सुख प्राप्त करता हो, चाहे उसके तरीके अनुचित ही क्यों न हों। पर एक धार्मिक व्यापारी सही तरीके से कमाकर सुख प्राप्त करता है चाहे उसे कुछ रूपयों का कभी घाटा ही क्यों न हो जाए। हालांकि आर्थिक हानि भी उसे होती नहीं है फिर भी उसका सुख तो उसे उचित तरीके अपनाने से ही मिल जाता है।

यही स्थिति धर्म की है। जब धर्म का सही अर्थों में पालन किया जाता है, जब धर्म व्यक्ति की जीवन शैली बन जाता है तो बाकी सुख तो बाद में मिलते हैं, उसका सुख तो उसे व्यवहार काल में ही मिल जाता है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक मंत्र है, जिसमें उपदेश किया गया है- **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व।** कि अक्षों से, पासों सें मत खेल, जुआ मत खेल, कृषि कर। मनुष्य को जुए से हटाकर कृषि में लगाने का उपदेश। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब लोग हल-बैल लेकर खेत की ओर चल पड़ें। वास्तव में ये दोनों बातें जीवन शैली की बातें हैं। जुआ खेलना एक जीवन शैली है, एक शैली कृषि करना है। जुए का अर्थ है- बिना समुचित पुरुषार्थ किये कुछ प्राप्त करना, प्राप्त करने की इच्छा करना। कृषि का अर्थ है- पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त जो मिले उसे प्रभु का प्रसाद समझकर संतोष के साथ ग्रहण करना। बिना कमाए कोई धन सम्पत्ति के महत्त्व को नहीं समझ सकता। धन का महत्त्व वही समझ सकता है जिसने उसके लिए पसीना बहाया हो, और धन कल्याणकारी भी केवल उसी के लिए हो सकता है। बिना परिश्रम के प्राप्त किया गया धन किसी को कभी सुख नहीं दे सकता। जो लोग जुए की जीवन शैली से कमाते हैं उनके धन का भोग कोई और ही करता है, यह चाहे उनकी सन्तान ही क्यों न हो। आज संसार में जो फिजूलखर्ची बढ़ रही है, उसका कारण यह जुए से कमाने की प्रवृत्ति ही है। आज बिना किये खाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। करते करते दूसरों को दुःख देने की वृत्ति बढ़ रही है, इसलिए न तो कमाते कमाते कभी तनावमुक्त होते न ही कमाने के बाद कभी संतुष्ट होते। हमारा कमाने का साधन ऐसा होना चाहिए कि कमाते-कमाते ही सुख मिले। कृषि करते करते ही-- फसल आने से पहले ही कृषि कार्य से न जाने कितने प्राणियों का उपकार हो जाता है। कितने कीट पतंगे-- कितने पक्षी, मूषक आदि। यह अहैतुक उपकार रूपी धर्म का कार्य उस जीवन शैली से अनायास ही हो जाता है। कृषि के कार्य में जाने या अनजाने दूसरों का उपकार करने का सुख मिलता है। यही कृषि की जीवन शैली अपनाने को कहा गया है।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर उसे जीवन शैली के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि सभी व्यक्ति विद्वान् नहीं हो सकते, लेकिन धार्मिक सभी हो सकते हैं। सुखी, शांत, तनाव रहित जीवन जीने का मनुष्य मात्र का अधिकार है और यह सब धर्म का पालन करके प्राप्त किया जा सकता है।

आपकी सम्मतियाँ

मार्च २०१४ का अंक देखा, पढ़ा, परखा-- मन खिल उठा। पत्रिका उलटी, पलटी- क्या छोड़ूँ! क्या पढ़ूँ! फिर दत्तचित्त होकर परायण कर ही डाला। वाह! नित्य नये सोपान! लेख संक्षिप्त किन्तु प्रभावी। 'लोकतंत्र का महापर्व' 'राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक नव वर्ष' 'मास्टर दा सूर्य सेन-क्रान्ति की बलिवेदी पर'। अन्य भी सभी लेख, प्रलेख, कविता--जो भी सामग्री है 'देखन में छोटे लगें घाव करैं गम्भीर'।

बढ़िया कागज, आकर्षक छपाई, प्रूफ निर्दोष, चित्र विचित्र, पृष्ठ १५ की ये पँक्तियाँ आपको समर्पित-

ये हिम्मत और मेहनत का जमाना है।
अपनी मेहनत से कुछ तो कर दिखाना है।।

सो आप दिखा ही रहे हैं। अब तो बधाई शब्द कुछ छोटा दिखाई दे रहा है। किसी शब्द कोष से देखूँगा कि आपकी इस पत्रिका के लिए प्रशंसा के लिए किस शब्द का प्रयोग करूँ!

प्रभु आपको शक्ति दें कि आप दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति कर इस क्षेत्र में इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर चित्रित 'वैदिक कालीन चित्र' की भाँति ही समस्त पाठकों को वशिष्ठ एवं वाल्मीकि की याद दिलाते रहें।

डॉ० सहदेव वर्मा
२४/४, बिशन सरुप कालोनी, पानीपत-१३२१०३

शांतिधर्मी का मार्च १४ अंक मिला। पत्रिका ज्ञानवर्धक, मार्गदर्शक तथा नैतिक शिक्षा का प्रचार करने वाली है। मुखपृष्ठ पर गुरुकुलीय चित्र ने मन मोह लिया। सम्पादकीय लोकतंत्र का महापर्व लाजवाब रहा। बेशक भारत संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, लेकिन जिस तरह हमारे मतदाता गैर जिम्मवारी का व्यवहार करते हुए शराब, पैसा, जाति-पाँति अथवा जान पहचान के आधार पर बेईमान, भ्रष्ट, निकम्मे तथा लापरवाह लोगों को चुनकर संसद/विधान सभाओं में भेज देते हैं, यह तो सरासर लोकतंत्र की हत्या है। हमारी १५ वीं लोकसभा में एक तिहाई सांसद ऐसे थे जिन पर हत्या, हिंसा, बलात्कार, सरकारी जमीनों पर गैरकानूनी कब्जों के मुकदमे चल रहे हैं। ये संसद में जाकर उसकी कार्रवाई में हिस्सा भी नहीं लेते और उसे सुचारू तरीके से चलने भी नहीं देते। जिस तरह ये लोग देखते देखते करोड़पति अरबपति बनकर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, और आम जनता को दो टाईम की सुख की रोटी भी नसीब नहीं होती, क्या ऐसे जन प्रतिनिधियों को सही मायने में जन प्रतिनिधि कहा जा सकता है? अमरीका तथा इंगलैंड जैसे देशों में यदि किसी जन प्रतिनिधि को लगता है कि उनके विचार अपनी पार्टी से मेल नहीं खाते तो वे तुरन्त अपने पद से त्यागपत्र देकर जनहित के लिए जनता के साथ जुड़ जाते हैं। हमारे देश के लोकतंत्र की विडम्बना यह है कि जनप्रतिनिधि जनहित को लात मारकर स्वार्थ सिद्धि हेतु अपनी आत्मा को मारकर कुरसी से चिपके रहते हैं। हमारे लोकतंत्र में लोगों का महत्त्व वोट डालने के सिवा और कहीं भी नहीं होता। मतदाताओं को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपेक्षाओं पर खरे न उतरने वाले अपने प्रतिनिधियों को वापस बुला सकें। आगामी चुनावों में मतदाता अधिक से अधिक संख्या में मतदान करें और सही प्रतिनिधियों को चुनें। इस सम्पादकीय के लिए साधुवाद! चाणक्य नीति और डॉ० रामभक्त लांगायन की अमृतवचनावली ज्ञानवर्धक हैं। सहदेव समर्पित की प्रस्तुति 'सीख हम सीखें युगों से' प्रेरणादायक है। डॉ० सत्यव्रत राजेश का लेख ज्ञान बढ़ाने वाला है। डॉ० जगदीश गांधी का लेख शिक्षकों और शिक्षण संस्थाओं के लिए मार्गदर्शक है। आचार्य भद्रसेन के रोचक लेख ने प्रभावित किया। डॉ० अग्रावत का लेखन सर्व जनोपयोगी है। स्वामी भीष्म जी की भजनावली और बालवाटिका ने मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धन भी किया।

प्रो० शामलाल कौशल
९७५-बी/२०, ग्रीन रोड, रोहतक-१२४००१

शांतिधर्मी पत्रिका का फरवरी २०१४ अंक प्राप्त हुआ। 'राष्ट्रीय चरित्र निर्माण से होगा विकास' नामक रचना उपयोगी है। हमारा यह मानना है कि 'भारत का राष्ट्रीय चरित्र राष्ट्रभाषा हिन्दी के आधार पर बनेगा, विदेशी भाषा के आधार पर नहीं।' हम यह भी मानते हैं कि हर व्यक्ति का चरित्र राष्ट्रीय चरित्र का मूलाधार है। 'स्वामी दयानन्द के संबंध में कुछ महापुरुषों के उद्‌गार' नामक रचना को पढ़ना अच्छा लगा। 'नाम बदल गया' शीर्षक नातिदीर्घ रचना 'प्रेरक-प्रोत्साहक' बन पड़ी है। कालजयी साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द के बारे में आलोचक डॉ० इन्द्रनाथ मदान का मत है कि 'उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनका अधिकाधिक गरीब होना है।'

डॉ० महेशचन्द्र शर्मा
अभिवादन, १२८-ए, श्याम पार्क
साहिबाबाद (गाजियाबाद)-२०१००५

सोम सरोवर (तृतीय खण्ड)

गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः

पाप की अन्तिम झांकी

❑पं० चमूपति जी

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतवित्सोम मत्सरः।
नुदस्वादेवयुञ्जनम्।। ६ ।।

ऋषिः – निध्रुविः = निश्चित ध्रुव।

(सोम!) मेरे सूखे हृदय के संजीवन (क्रतुवित्) तेरी पहुंच मेरे प्रत्येक संकल्प, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक चेष्टा में है। (मत्सरः) तू हर्ष का सरोवर है। तू (मृधः अपघ्नन्) पापों का विनाश कर (पवसे) पवित्रता का प्रवाह लाता है। (अदेवयुं जनम्) पाप की ओर प्रवृत्त इस जन को (नुदस्व) पाप–पथ से हटाकर सन्मार्ग से प्रेरित कर।

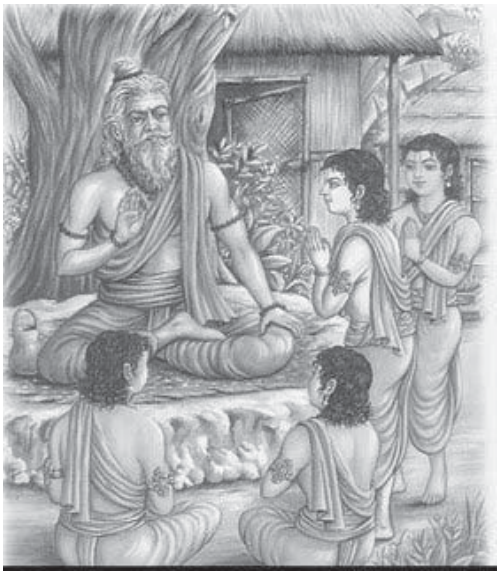

मेरे अन्दर मस्ती का सागर ठाठें मार रहा है। मैं उठूँ, बैठूँ, चलूँ, फिरूँ, कुछ करूँ, मस्ती की लहर मेरी प्रत्येक क्रिया के साथ–साथ उठती है। एक पवित्र हर्ष का प्रवाह है, जिसमें मैं दिन–रात डूबा रहता हूँ। मेरा प्रत्येक कार्य ईश्वर के समर्पण है। ऐसी अवस्था में पाप को उदित होने का अवसर ही कहाँ है? सोम–रस के पहिले ही घूंट के साथ मैं पाप के बीज तक को नष्ट कर चुका हूँ।

प्रभो! फिर बात क्या है? मस्ती के इस अटूट प्रवाह में भी कभी–कभी अहंकार की, अभिमान की और इनके साथ–साथ कभी–कभी काम की, क्रोध की झाँकी–सी आ जाती है। मैं जैसे अपने आपे से बाहर हो जाता हूँ। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह मस्ती कृत्रिम थी, धर्म का एक अस्थिर आवरण सा था, जो मेरे हृदय में बैठे 'अदेव' को– राक्षस को–कुछ देर के लिए आवृत्त कर रहा था– ओट–सी दे रहा था। वास्तव में मैं 'अदेवयु'–पापी ही हूँ।

तो क्या तुम इस पाप की प्रवृत्ति को मिटा नहीं सकते? या ये उसकी– विनाश पा रहे पाप की– अन्तिम झलकियां ही हैं? नष्ट हो रहे संस्कार अपनी मोहिनी का क्षणिक म्रियमाण रूप दिखा–दिखाकर विदा हो रहे हैं।

मैं अपने पुराने 'अदेवयु' स्वभाव का आखिरी दर्शन कर रहा हूँ। अहा! कैसा प्यारा रूप है। मन मोहित होने लगा। मेरे सोम–रस वाले प्रभो! अब तुम्हारा ही आसरा है। इस वृत्र का संहार कीजिए। मेरे संयम का, तप का इसी परीक्षा की घड़ी में तुम्हारे सिवा और कौन रक्षक हो सकता है? तुम्हारे सोमरस की लाज! उसे कहीं निष्फल न होने देना। तुम्हारा भक्त होकर मैं 'अदेवयु' रहूँ? मुझे प्रेरित कीजिये– पुण्य की ओर, अपने पवित्र मार्ग की ओर प्रेरित कीजिये।

चाणक्य-नीति

षष्ठः अध्यायः
(क्रमागत)

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दारा न कुदारदारा।।१२।।

बुरा राज्य अच्छा नहीं है, इससे तो राज्य न ही हो तो ही अच्छा है। बुरा मित्र अच्छा नहीं है। इससे तो मित्र का न होना ही अच्छा है। दुष्ट शिष्य होने से तो शिष्य का न होना ही ठीक है। दुष्टा स्त्री से तो स्त्री न हो तो ही ठीक है।

कुराज्यराज्येन कुतः प्रजासुखम्,
कुमित्रमित्रेण कुतो निवृत्तिः?
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः?।१३।।

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा सुखी नहीं रह सकती। दुष्ट मित्र होने से कभी शांति नहीं मिल सकती। दुष्टा स्त्री हो तो कभी भी घर में मन नहीं लग सकता और बुरे शिष्य को पढ़ाने से कभी यश की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सिंहादेकं वकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पञ्च शिक्षेच्च षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्।।१४।।

सिंह और बगुले से एक-एक गुण का ग्रहण करे। मुर्गे से चार गुण ग्रहण करे। कौए से पांच सीख ले। कुत्ते से छः और गधे से तीन गुणों की शिक्षा ग्रहण की जा सकती है।

प्रभूतं कार्यं अल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते।।१५।।

कार्य चाहे छोटा हो या बड़ा, पूरे पराक्रम और पूरी शक्ति से करना चाहिए। यह एक गुण हम सिंह से सीख सकते हैं।

अमृत वचनावली

ज्ञानशतकम्

❑**डॉ॰ रामभक्त लांगायन** आई ए एस (से॰ नि॰)

मृत्तिकागृहनिर्माणे न क्लिश्यन्ति बुधा जनाः।
सैकतगृहनिर्माणं बालानामेव तोषणम्।।७।।

जो संसार में मिट्टी का घर बनाने में अपना समय नष्ट नहीं करते, वे प्रबुद्ध पुरुष हैं। उनके अन्दर मेरे-तेरे की भावना नहीं होती। शेष सब रेत के घरों से खेलते बच्चों के समान हैं।

सर्वरागी दरिद्रोऽस्ति, सर्वत्यागी महाधनः।
सर्वं विहाय ये यान्ति, तैरिदं प्राप्यते महत्।।८।।

जिनके पास सब-कुछ है, वे गरीब हैं और जो सम्पत्तिशाली हैं उनके पास कुछ भी नहीं है। वास्तव में जो सब-कुछ छोड़ देते हैं, वे ही सब-कुछ पाते हैं।

आत्मा ज्ञेयश्च ध्येयश्च, छायामात्रं शरीरकम्।
छायाग्राही भवेन्मूर्खो नासौ साफल्यमश्नुते।।९।।

आत्मा पर हाथ रखना और उसे जानना जरूरी है। जो छाया को पकड़ने में लगे रहते हैं वे उसे कभी नहीं पकड़ सकते। काया छाया है। जो उसके पीछे चलता है, वह कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

न हि सत्यात्परोधर्मः सर्वः सर्वत्र भासते।
न विवादपरैर्ग्राह्य ईश्वरो सत्यनिष्ठितः।।१०।।

धर्म एक है, सत्य एक है। सब धारणाओं और आग्रहों को छोड़कर जो सत्य को देखता है वह सब जगह एक ही सत्ता और एक ही परमात्मा का अनुभव करता है।

वासनाभिर्दृढीभूतं मालिन्यं बहिरास्थितम्।
पूतात्मानं तु सर्वत्र यः पश्यति स पश्यति।।११।।

भीतर का मैल ही हमें बाहर दिखाई देता है, जो सबमें पावन आत्मा को देखता है, वही प्रभु को प्राप्त कर सकता है।

पन्थाः सुवर्तुलाकारो वासनानां परं मतः।
नात्र लक्ष्यमवाप्नोति जनो विभ्रमितः सदा।।१२।।

वासनाओं का पथ गोल है। उनके पीछे चलकर कोई भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति अपने रास्ते से भटक जाता है।

झूठ का मकड़जाल

❑नरेन्द्र आहुजा विवेक
५०२, जी एच २७, सैक्टर २० पंचकूला

आज के इस भौतिकतावादी युग में भौतिक सुख सुविधाओं की लालसा, इच्छा, अपेक्षा और आकांक्षा में तथाकथित प्रगति के सोपान चढ़ने के लिए झूठ का शार्टकट मनुष्य के जीवन का कटशार्ट कर देता है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को हो सकता है कि ऐसा प्रतीत हो कि एक झूठ बोलने से उसे कुछ तात्कालिक लाभ हुआ या वह झूठ बोलकर किसी दंड से बच गया, लेकिन झूठ बोलने के दूरगामी परिणाम उसके लिए सदैव बहुत हानिकारक होते हैं। एक झूठ को बोलकर उसे छिपाने के लिए हमें झूठ की अंतहीन सी कड़ी बुननी पड़ती है और झूठ बोलने वाला अंतत: मकड़ी की तरह खुद अपने बुने हुए झूठ के मकड़जाल में फंस जाता है। झूठ बोलने के दुष्परिणामों पर यदि हम विचार कर लें तो शायद इस बुराई से बच सकें।

● झूठ बोलने वाले का कोई कभी विश्वास नहीं करता क्योंकि एक बार झूठ पकड़े जाने पर सामने वाला व्यक्ति सदा उसके कथन पर संशय ही करता है।

● झूठ बोलने वाला स्वयं भी कभी निश्चिंत नहीं रह सकता, क्योंकि उसे सदा इस बात का भय लगा रहता है कि कहीं उसका झूठ पकड़ा ना जाये।

● झूठ बोलने वाला सदा तनावग्रस्त रहता है और झूठ पकड़े जाने पर क्रोध में आ जाता है। दोनों ही स्थितियाँ स्वयं उसके लिए हानिकारक होती हैं।

● झूठा व्यक्ति झूठ बोलकर अधर्म का आचरण करता है और अंत में ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में झूठ रूपी पापाचार के लिए दंड का भागी बनता है।

● झूठ की पोल खुलने के डर से झूठा व्यक्ति अपने से छोटे और कमजोर लोगों से भी डरता है और अक्सर लोग उसकी झूठ की कमजोरी के कारण ब्लैकमेल करते हैं।

● कष्ट के समय भी कोई झूठे व्यक्ति की सहायता नहीं करता, क्योंकि उस समय भी लोग यही सोचते हैं कि झूठा

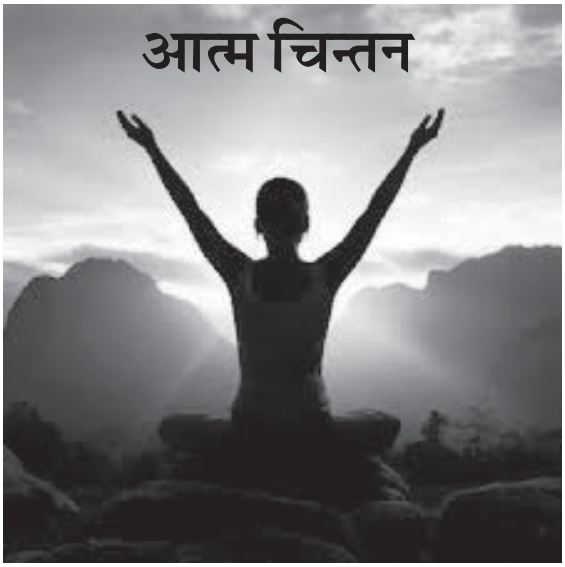

झूठ बोलने वाले व्यक्ति को हो सकता है कि ऐसा प्रतीत हो कि एक झूठ बोलने से उसे कुछ तात्कालिक लाभ हुआ या वह झूठ बोलकर किसी दंड से बच गया, लेकिन झूठ बोलने के दूरगामी परिणाम उसके लिए सदैव बहुत हानिकारक होते हैं।

उनकी सहायता या सहानुभूति पाने के लिए झूठ बोलकर कष्ट होने की नौटंकी कर रहा है।

● झूठ बोलने वाले की सत्य बात को भी लोग झूठ समझ लेते हैं।

● झूठ बोलकर उसे छिपाने का प्रयास करने पर उत्पन्न तनाव के कारण मनुष्य के शरीर में कई रासायनिक परिवर्तन होते हैं और उनके कारण उच्च रक्तचाप या बीपी मधुमेह, हृदय रोग आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

● झूठ पकड़े जाने पर लड़ाई झगड़े पैदा होते हैं और इससे पारिवारिक, सामाजिक तनाव भी पैदा होता है। झूठ बोलना और झूठ बोलकर फायदा लेने की कोशिश करना अक्सर परिवारों में संबंधों के टूटने का कारण बनते हैं और अंतत: यह परिवारों के टूटने का कारण बनता है।

अत: हम सभी को चाहिए कि झूठ का त्याग करके सत्य के व्रत को धारण करके जीवन में निर्भय और निश्चिंत होकर जीवन व्यतीत करें।

आर्य आक्रमण की मान्यता पर डॉ० रामविलास शर्मा का आक्रमण

❑हृदयनारायण दीक्षित

डॉ० शर्मा ने तमाम तथ्यों,भाषा विज्ञानी साक्ष्यों को देकर कहा कि आर्य भारतीय ही थे, वे बाहर से नहीं आये बल्कि भारत से बाहर भी गये थे।

प्रख्यात चिन्तक डॉ0 रामविलास शर्मा जीवित होते तो आज १०० वर्ष के होते। लेकिन १०० वर्ष जीना कोई बड़ी बात नहीं। असल बात है मनुष्य का कर्म और उसका अवदान। उन्होंने १०० वर्ष का काम २०-२५ वर्ष में ही पूरा किया। विश्व इतिहास को चुनाती दी, भारतीय इतिहास बोध को गौरवशाली बनाया। भारतीय संस्कृति को राजनीति के सिर पर बैठाया। भारतीय अनुभूति और दर्शन की यथार्थवादी व्याख्या की। ऋग्वेद को भारतीय चिन्तन और लोक संस्कृति का विकास बताया। ऐसी ढेर सारी बाते हैं उनके काम में, लेकिन सबसे बड़ी बात है- आर्य आक्रमण के झूठ का प्रतिकार। डॉ० शर्मा ने तमाम तथ्यों,भाषा विज्ञानी साक्ष्यों को देकर कहा कि आर्य भारतीय ही थे, वे बाहर से नहीं आये बल्कि भारत से बाहर भी गये थे। अपनी स्थापनाओं को लेकर उन्होंने विचारधारा से ज्यादा तथ्यों को सर्वोपरि माना। देश उनकी जन्म-शताब्दी मना रहा हैं। उनकी स्मृति को प्रमाण है।

यूरोपीय साम्राज्यवाद ने भारत पर शासन किया। भारत का प्राचीन इतिहास भी गलत ठहराया। उन्होंने २०वीं सदी में ही घोषणा की कि भारत के मूल निवासी आर्य भी हमलावर थे, कि वे यूरोप या एशिया के किन्हीं सुदूर क्षेत्रों से आये। उन पर सिंधु घाटी सभ्यता को तहस-नहस करने का आरोप भी लगाया गया। उन्हें हड़प्पा व मोहनजोदडो को ध्वस्त करने का गुनहगार भी ठहराया गया। लेकिन भारत के सम्पूर्ण साहित्य और श्रुति, स्मृति में आर्य आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद सहित चार वेद , ब्राह्मण , आरण्यक और लगभग २०० उपनिषदें हैं। रामायण, महाभारत और १८ पुराण हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र और चरक संहिता हैं। बौद्ध परम्परा का विपुल साहित्य है। मैगस्थनीज की इण्डिका है, ह्वेनसांग, फाह्यान के यात्रा-वृत्तांत हैं। लेकिन आर्य आक्रमण कहीं नहीं है। आर्य आक्रमण के सिद्धांत का उद्देश्य ब्रिटिश राज को सही ठहराना था। यानी अंग्रेज विदेशी थे, तो आर्य भी विदेशी हमलावर थे। डॉ0 शर्मा ने लिखा- 'आर्यों का आक्रमण , इस मान्यता का जन्म और प्रचार एशिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से जुड़ा हुआ है। विस्तार के समय इस मान्यता का लक्ष्य आर्यों को द्रविड़ों से अलग करना है, ह्रास के समय उत्तर पश्चिम भारत को शेष भारत से अलग करना है।'

डॉ० शर्मा ने 'पश्चिम एशिया और ऋग्वेद' की प्रस्तावना में लिखा- 'आर्यों ने भारत में उत्तर-पश्चिम से प्रवेश किया, यह कल्पना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की है। पुरातत्त्व ने (मार्शल से व्हीलर तक) उसे वहाँ से ग्रहण किया। सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों के ईरानी-यूरोपियन प्रतिरूपों में सघोषता और महाप्राणता का संयोग नहीं होता। यह विशेषता केवल भारतीय आर्य भाषाओं की है। यह एक तथ्य भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत को ध्वस्त करने के लिए काफी है। आक्रमणकारी आर्यों ने हड़प्पा सभ्यता का नाश किया , यह कल्पना भी निराधार है। हड़प्पा सभ्यता का ह्रास 1750 ई० पू० के लगभग होता है। उस समय सरस्वती जलहीन हो रही है। किन्तु ऋग्वेद और यजुर्वेद में सरस्वती जल से भरी शक्तिशाली नदी है। इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद की रचना हड़प्पा सभ्यता के ह्रास से १७५० ई० पू० से , बहुत पहले हुई थी। सरस्वती भारत के प्राचीन इतिहास की काल-विभाजक रेखा है। आर्य आक्रमण सिद्धांतवादियों के लिए उसे लांघ पाना संभव नहीं है।

ऋग्वैदिक और हड़प्पा सभ्यता का भौगोलिक क्षेत्र

एक समान है। हड़प्पा सभ्यता ऋग्वैदिक सभ्यता के विकास का ही परिणाम है। डॉ. शर्मा ने लिखा है- 'जो सिंधु घाटी में था, वह बाद में भी था। सिंधु घाटी की किसी वस्तु के बारे में संशय हो तो देखना चाहिए कि बाद में ऐसा ही यहाँ कुछ सुलभ था या नहीं।' (पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद, पृष्ठ-34। दोनों सभ्यताओं का प्रवाह एक है। जहाँ पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अभाव हैं, वहाँ साहित्य और काव्य भी साक्ष्य बनते हैं। ऋग्वेद ऐसा ही साक्ष्य है। डॉ. शर्मा ने लिखा- 'मार्शल सिद्ध करना चाहते थे कि भारत की सभ्यता, वैदिक संस्कृति से अलग हटकर, सिंधु सभ्यता का विकास है। धरती माता की उपासना, शिव की पूजा, वृक्षों और पशुओं की पूजा, जल और नागों आदि की पूजा-यह सब बाद की भारतीय सभ्यता में था, उसके स्रोत सिंधु घाटी में थे। सिंधु सभ्यता ऋग्वेद से दूर है। उत्तरकालीन भारतीय सभ्यता ऋग्वेद से दूर है। इस सभ्यता के स्रोतों का पता न था, मोहनजोदड़ो के उत्खनन से उन स्रोतों का पता चल गया है। ऋग्वेद इस सारे विकास में व्यवधान की तरह है। मार्शल इसे अपना और अपने सहयोगियों का ऐतिहासिक कार्य मानते थे कि भारत की आर्येतर सभ्यता के मूल स्रोत उन्होंने खोज निकाले हैं।'

यह सभ्यता भारतीय थी, लेकिन साम्राज्यवादी षड्यंत्र के अनुसार विदेशी थी। सच बात यह है कि मिस्र, सुमेर और भारत के प्राचीन सांस्कृतिक संबंध थे। डॉ. शर्मा अपनी पुस्तक 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद' में कहते हैं- 'मिस्र, सुमेरू, भारत इनके सृष्टि सम्बन्धी चिंतन में बड़ी समानता है।' (वही पृष्ठ 95) भारत की देवकथाएं, सृष्टि चिंतन और आदर्श परम्पराओं ने मिस्र व सुमेरे को प्रभावित किया। ऋग्वेद में वर्णित देवतंत्र, कृषितंत्र और समुन्नत समाज वैदिक सभ्यता की गवाही है। डॉ0 शर्मा ने लिखा- 'ऋग्वेद को अलग रखकर सुमेरी, बेबिलोनी देवतंत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता। सुमेरी, बेबीलोनी आख्यानों की अनेक मूल प्रेरणायें, उनके बहुत से रहस्य, मुद्दे ऋग्वेद तथा परवर्ती भारतीय साहित्य के आलोक में ही स्पष्ट होते हैं। सृष्टि संबंधी कल्पनायें, प्रमुख देवों से संबंधित धारणायें, देवों और मनुष्यों की कथाएं, काव्यों के विशेष शब्द बंध अनेक खेपों में भारत से सुमेर, वहाँ से मिस्र और अन्य देशों में पहुंचते रहे हैं।' (पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद, पृष्ठ-131)

डॉ. शर्मा ने रेनफ्रीव की आर्कियोलोजी ऐण्ड लिग्विस्टिक्स के हवाले से लिखा- 'इतिहासकारों और पुरातत्त्वज्ञों का दृष्टिकोण उपनिवेशवाद से प्रभावित रहा है, यह बात रेनफ्रीव ने बहुत स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है। आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत इसी दृष्टिकोण से प्रेरित था। इस सिद्धांत के समर्थन में ऋग्वेद का बराबर हवाला दिया जाता था। पर रेनफ्रीव ने व्हीलर के मत का खंडन करते हुए लिखा: जब व्हीलर सप्तसिंधुओं की भूमि, पंजाब पर आर्यों के आक्रमण की बात कहते हैं, इसका कुछ भी आधार नहीं है। (पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद पृष्ठ-42) डॉ. शर्मा का आग्रह है- 'रेनफ्रीव ने आर्यों के आक्रमण सिद्धांत का खंडन किया, आर्यों को भारत का प्राचीन निवासी माना। भारत के जो इतिहासकार व्हीलर आदि की मान्यताएँ दोहराते चले जाते हैं, उन्हे रेनफ्रीव के विवेचन पर ध्यान देना चाहिए। लैंगडन से रेनफ्रीव तक (1931 सें 1987 तक) भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक धारा ऐसी रही है जो भारत पर आर्यों का आक्रमण सिद्धांत अस्वीकारती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंत में यही धारा विजयी होगी।' (वही) डॉ. शर्मा की बात सच निकली, आर्य आक्रमण का सिद्धांत धराशायी है। इसी के सिद्धांती अब 'आर्य आगमन' का नया सिद्धांत चला रहे हैं।

डॉ. शर्मा लिखित 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद (पृष्ठ-71) में 'आर्य बर्हिर्गमन' सिद्धांत की स्थापना है। डॉ. शर्मा ने पार्जीटर के हवाले से लिखा- 'पाजीटर ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि भारत की साहित्य-परम्परा में जहाँ आर्यों के आक्रमण की ओर कहीं भी संकेत नहीं है, वहाँ उनके भारत से बाहर जाने का उल्लेख स्पष्ट है (वही पृष्ठ-71)। आर्य व्यापार आदि कार्यों से बाहर जाते थे। गुर्ने ने भी आर्यों का विदेश प्रवास तर्क सहित सिद्ध किया है। डॉ शर्मा ने अश्वविद्या, रथचालन विद्या के प्रसंग में गूर्ने की बातों को ध्यान देने योग्य बताया और लिखा- 'गूर्ने के विवरण से एक बात समझ में आने लगती है कि अधिकांश विद्वान जिसे भारत में आर्यों के प्रवेश का समय माने बैठे हैं वह वास्तव में उनके भारत में से बाहर, प्रभाव विस्तार का समय है। (वही) डॉ. शर्मा का निष्कर्ष है, दूसरी सहस्राब्दि के मध्य में भारतीय मूल के आर्य पश्चिमी एशिया में फैले हुए थे। ये इन्डो इरानियन शाखा के घुमन्तु आर्य नहीं है, ये भारतीय आर्य हैं और ऋग्वेद की रचना के बाद भारत से बाहर गये हैं। (वही, पृष्ठ 87) बावजूद इसके पश्चिम और भारत के कतिपय विद्वान आर्यों को हमलावर बताते हैं।

(नवोत्थान लेख सेवा, हिन्दुस्थान समाचार)

जयन्ती १४ अप्रैल

बाबा साहब के विचारों का अध्ययन जरूरी

❒डॉ० कृष्णगोपाल

वे आदि से अन्त तक भारतीय थे। यहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों तथा महान् जीवन दर्शन में उनकी गहरी आस्था थी। ढोंग, पाखण्ड, अमानवीय परंपराओं तथा विकृत मान्यताओं के विरुद्ध जीवन भर संघर्ष करते रहे लेकिन, उनका कोई शत्रु नहीं था। समाज में मानवीय दर्शन की पुनर्स्थापना में सहयोग करने वाले सभी उनके मित्र थे।

अपनी विलक्षण क्षमताओं के आधार पर एक विशिष्ट स्थान बना चुके डॉ० भीमराव अम्बेडकर की सर्वाधिक ख्याति एक संविधान निर्माता तथा समाज के उपेक्षित और वंचित वर्ग के अधिकारों की रक्षा हेतु संघर्षरत योद्धा के रूप में ही अधिक दिखाई देती है। उनके जीवन के ये दोनों ही आयाम महत्वपूर्ण हैं किन्तु उनके जीवन और कार्य के अनेक महत्वपूर्ण आयाम और भी हैं, जिनके बारे में अध्ययन, चिन्तन तथा विश्लेषण आवश्यकतानुरूप नहीं हो पाया है। उनकी प्रतिभा को देश ने स्वीकार किया था, इसी के फलस्वरूप, वे संविधान निर्मात्री सभा (Drafting comittee) के सदस्य बने। उनके मन में यह लक्ष्य था कि देश में अस्पृश्य बन्धुओं को उनके संवैधानिक अधिकार दिलाने का प्रयास करूँगा। उनको आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्हें 'संविधान प्रारूप समिति' का सदस्य बनाया गया। और जब उन्हें इस 'प्रारूप समिति' का अध्यक्ष बनाया गया तब तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। उनको स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि एक ऐसी सभा, जिसमें अधिकांश सदस्य तथाकथित उच्च जातियों के थे, मिलकर उन जैसे एक 'अस्पृश्य' व्यक्ति को 'प्रारूप समिति' का अध्यक्ष भी बना सकते हैं। संविधान सभा में सभी के समक्ष अपने भाषण में वे कहते हैः I came into constituent Assembly with no greater aspiration than to safeguard the interests of the scheduled castes. I had not the remotest idea that i would be called upon to undertake more responsible function. I was therefore greately surprised when the assemly elected me to the Drafting committee. I was more than surprised when the Drafting committee elected me to be its chairman. There were in the Drafting committee men bigger, better and more competent than myself such as my friend Sir Alladi Krishanaswami Ayyar." (Speech in constituent Assembly on- 25.11.1949)

समाज सुधारक या क्रान्तिकारी

डॉ० अम्बेडकर जी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण बात हमको दिखाई देती है वह यह है कि वे पुरानी सभी मान्यताओं, आदर्शों और व्यवस्थाओं को ध्वस्त करना नहीं चाहते तथा किसी जाति या वर्ण के शत्रु भी नहीं है।

डॉ० अम्बेडकर यह जानते थे कि भारतीय दर्शन के मौलिक-तत्त्व बहुत उदात्त हैं, किन्तु विकृतियों, रूढ़ियों, ढोंग, पाखण्ड, कर्मकाण्डों एवं परंपराओं के अनावश्यक अतिरेक ने समस्त दर्शन को ही ढक दिया है।

धर्म जीवन का संबल है

बाबा साहेब ने धर्म को स्पष्ट करते हुए प्रोफेसर एलवुड के विचार को प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं- 'धर्म मूलतः एक मूल्य निर्धारण प्रवृत्ति है, (जो) मनुष्य के विचारों से कहीं अधिक संकल्प तथा संवेगों को सार्वभौमिक बनाती है। इस प्रकार 'धर्म' संकल्प तथा संवेग के पक्ष को लेकर अपनी दुनिया के साथ मनुष्यों के बीच समन्वय करता है। 'धर्म' आशा को उत्साहित करता है और जीवन संघर्ष में असभ्य तथा सभ्य दोनों में विश्वास पैदा करता है।-- इसी ढंग से धर्म जीवन का सामना करने के लिए शक्ति के नये स्तरों को बनाता है, जबकि साथ ही साथ आन्तरिक तथा बाह्य पक्षों में एक घनिष्ठ समन्वय भी स्थापित करता है।' (डॉ० अम्बेडकर का धर्म दर्शन, पृ० २७, २८) सभी को साथ लेकर चलने की बात ही उन्होंने अपने अनुयायियों को लगातार सिखलाई। उनका संघर्ष उन जातियों से नहीं वरन् उस मनोवृत्ति से था जो दूसरों को तुच्छ या अस्पृश्य समझती है। यही कारण था कि उन्होंने घृणा, वैमनस्य, द्वेष अथवा जातिगत संघर्ष को कभी भी पनपने नहीं दिया।

समाज सुधारक और राजनीतिक नेता में अन्तर

डॉ० साहब ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न सभी के सामने रखा कि अधिक साहस किस में होता है? उस समाज सुधारक में– जो समाज को चुनौती देता है और अपने लिए सामाजिक बहिष्कार की सजा आमन्त्रित करता है, या उस राजनीतिक बन्दी में जो सरकार को चुनौती देता है और केवल कुछ महीनों की या कुछ सालों की जेल की सजा पाता है? जब कोई समाज सुधारक समाज को चुनौती देता है तब कोई भी व्यक्ति उसको शहीद कहकर उसका स्वागत नहीं करता। लेकिन जब राजनीतिक देशभक्त सरकार को चुनौती देता है तब उसकी सराहना की जाती है और उसका उद्धारक और मुक्तिदाता के रूप में आदर किया जाता है।

अर्थशास्त्री डॉ० अम्बेडकर

यह शायद बहुत ही कम लोगों को जानकारी होगी कि डॉ० अम्बेडकर एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री भी थे। उन्होंने विश्व के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में जाकर अर्थशास्त्र का व्यापक अध्ययन किया था। लंदन स्कूल ऑफ इकानामिक्स से उन्होंने एम०ए०, पीएचडी, डीएससी आदि उपाधियाँ प्राप्त की थीं।

मुस्लिम बहुल क्षेत्र सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलगर करना उचित नहीं

३ फरवरी १९२८ को साइमन कमीशन भारत आया था। सारे देश में इसका तीव्र विरोध हुआ। उस समय मुस्लिम नेता मांग कर रहे थे कि सिन्ध क्षेत्र को बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलग कर एक पृथक प्रांत बना दिया जाय। डॉ० अम्बेडकर को भी बंबई विधान परिषद् की प्रांतीय समिति के लिए चुना गया था। बम्बई प्रान्त की समिति ने १९२९ में जो अपनी संस्तुतियाँ दी थीं अनुसार उन्होंने दो प्रमुख मांगें साइमन कमीशन के सामने रखी थी।

सिन्ध क्षेत्र को बंबई प्रेसीडेन्सी से अलग कर एक नया प्रान्त बनाया जाय।

बम्बई प्रांत की १४० सीटों में से ३३ स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित किये जायें तथा उनके लिए पृथक मुस्लिम मतदाता मण्डल भी सुनिश्चित हो।

डॉ० अम्बेडकर जी ने इन दोनों मांगों का विरोध किया और अपनी रिपोर्ट अलग से दी।

मुसलमानों के पृथक् निर्वाचन मण्डलों का विरोध

डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं– शायद बहुत लोग यह नहीं जानते कि केवल भारत ही ऐसा देश नहीं है जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में हैं। दूसरे कई देशों में भी मुसलमानों की इसी प्रकार की स्थिति है। बुल्गारिया, अल्बानिया, ग्रीस, रूमानियाँ, युगोस्लाविया और रूस आदि देशों में भी मुसलमान अल्पसंख्या में है। क्या उन देशों में भी मुसलमानों ने पृथक् निर्वाचन मण्डलों की आवश्यकता पर बल दिया है? जिस प्रकार इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि उन देशों में मुसलमानों ने पृथक् निर्वाचन मण्डलों के बिना ही निर्वाह कर लिया है अतएव मुसलमानों का पक्ष लक्ष्य से कहीं दूर ओर तर्क से परे है। डॉ० अम्बेडकर प्रारंभ से ही पृथक मतदाता मण्डल के विरोधी थे। साइमन कमीशन के समय भी उन्होंने इस नीति का विरोध किया था।

भाषा के आधार पर प्रान्त नहीं

डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि भारत एक बड़ा राष्ट्र है तथा देशभर में फैली हुई भाषाएँ हमारे राष्ट्र की विविधता और समृद्धि को प्रकट करती हैं। अलग–अलग क्षेत्रों की भाषाओं ने बड़े व्यापक और श्रेष्ठ साहित्य का सृजन किया है। सभी भाषाएँ राष्ट्र की धरोहर हैं और सभी हमारी अपनी हैं, किन्तु भाषा के आधार पर प्रांतों की रचना उचित नहीं। प्रांतों की रचना का आधार प्रशासन का सरल एवं सुविधाजनक संचालन ही होना चाहिए।

आर्य कहीं बाहर से नहीं आये

अंग्रेजों द्वारा बड़ी चतुराई से यह प्रचारित किया जा रहा था कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण और यहाँ प्रवेश किया। डॉ० साहब ने बहुत परिश्रमपूर्वक एक विस्तृत शोध–ग्रंथ लिखा। निष्कर्ष रूप में डॉ० अम्बेडकर का कहना था कि पश्चिमी विचारकों ने योजनापूर्वक एक षड्यन्त्र रचा और एक परिकल्पना गढ़ दी कि आर्य यहाँ पर कहीं बाहर से आये हैं और जैसा अत्याचार अंग्रेजों ने अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अफ्रीका आदि देशों में जाकर वहाँ के मूल नागरिकों पर किया था, वैसा ही आर्यों ने यहाँ के लोगों पर किया है। आर्यों ने भी यहाँ के मूल निवासियों को गुलाम बनाकर शूद्रों की श्रेणी में डाल दिया है। डॉ० अम्बेडकर ने पश्चिमी विचारकों की इस परिकल्पना को झूठ का पुलिन्दा ही नहीं कहा वरन् एक धूर्ततापूर्ण प्रयास कहा।

विदेशनीति और डॉ० अम्बेडकर

स्वतन्त्रता के बाद प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा विदेशनीति का जो प्रारूप देश के सामने रखा गया उसको देखकर डॉ० अम्बेडकर प्रसन्न नहीं थे। सामने आते हुए संभावित खतरे उन्हें स्पष्ट दिख रहे थे। इन्हीं सब कारणों से उन्होंने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया और इसकी पूर्व संध्या पर संसद में भाषण देते हुए कहा– देश की विदेश नीति को देखकर मैं केवल असंतुष्ट और व्यग्र ही नहीं हूँ, वरन् में चिन्तातुर भी हूँ। कोई भी व्यक्ति जो भारत की विदेश नीति के सम्बन्ध में एवं दूसरे देशों के

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

वेदों में व्यक्तिवाद व समाजवाद का उत्तम समन्वय

❒स्व० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

व्यक्ति धर्म व समाजधर्म में कोई विरोध नहीं है, किन्तु वे एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का एक साथ पालन करने से मनुष्य वास्तव में पूरा सदाचारी होता है और अपने जीवन को सफल करके मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

वेदों में व्यक्तिवाद व समाजवाद दोनों का वर्णन करने उनका उत्तम समन्वय किया गया है। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में निम्नलिखित तीन मंत्र आये हैं, मैं इन मंत्रों की व्याख्या करने से पूर्व उनका केवल शब्दार्थ देता हूँ-

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ संभूत्यां रताः।।९।।
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।१०।।
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।११।।

अर्थ- महा अंधकार में वे गिरते हैं जो असंभूति की उपासना करते हैं। उनसे भी अधिक अंधकार में वे जाते हैं जो संभूति में रमे हुए हैं। संभूति का और ही फल बतलाया है, असंभूति का और ही फल कहा है। ऐसा हमने विद्वानों से सुना है, जिन्होंने हमको इसका उपदेश दिया है। संभूति व असंभूति जो इन दोनों को एक साथ जानता है वह असंभूति से मृत्यु को तैर कर संभूति से अमृतत्व को पा लेता है।

संभूति व असंभूति शब्दों के भाष्यकारों ने कई प्रकार अर्थ किये हैं। ऊपर लिखे तीन मंत्रों में संभूति का अर्थ समाजवाद व असंभूति का अर्थ व्यक्तिवाद मुझ को बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है। सम् (मिलकर) भू (होना वा रहना), इस प्रकार संभूति का अर्थ समष्टि या समाजनिष्ठा या संघभाव होता है। असंभूति का इसके प्रतिकूल मिलकर न रहना, अकेले रहना, व्यष्टि या व्यक्ति भाव है।

समाज धर्म के पालन की आवश्यकता

ईश्वर ने मनुष्य की रचना ऐसी की है कि वह अकेला नहीं रह सकता, समाज में ही रह सकता है। (Man is Social animal) अंग्रेजी कहावत का यही भाव है। असभ्य जंगली मनुष्य भी किसी प्रकार का समूह बनाकर रहते हैं। सभ्य मनुष्य ग्राम वा नगर बनाकर निवास करते हैं, बिना दूसरे मनुष्यों की सहायता के हमको अन्न वस्त्र भी नहीं मिल सकते। भोजन के लिए हमको अन्न चाहिए। उसके लिए खेती करने की आवश्यकता है। खेती के लिये हल बैल चाहिए। हल बनाने के लिए बढ़ई की आवश्यकता है। भोजन पकाने व खाने के बर्तनों के लिए लुहार आदि चाहिए। इसी प्रकार वस्त्रों के लिए रूई चाहिए, रूई को धुनने, कातने व कपडा बुनने के लिए जुलाहे आदि की सहायता चाहिए। इस प्रकार साधारण भोजन व वस्त्र प्राप्त करने में ही हमको पचासों सैंकड़ों मनुष्यों की सहायता लेनी पड़ती है। यही समाज की रचना है। समाज में रहकर मनुष्य को कुछ ऐसे धर्मों को पालन करना आवश्यक होता है जिससे समाज के अन्य व्यक्तियों के रहन-सहन व सुख में बाधा न पड़े। ऐसे धर्मों का शास्त्रों में 'यम' नाम रखा गया है। योगदर्शन में ५ यम इस प्रकार बतलाये गये हैं- 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' (अर्थात्) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- यम हैं, इनकी संक्षेप में व्याख्या करनी आवश्यक है-

(१) अहिंसा- अर्थात् किसी दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार दुःख न देना। यह स्पष्ट है कि यदि इस धर्म का पालन न हो और एक मनुष्य दूसरों को दुख देवे तो समाज की व्यवस्था नहीं चल सकती। हिंसा में मनुष्य हत्या से लेकर छोटे से छोटा दुःख देना भी शामिल है।

इस धर्म के कुछ अपवाद हैं। एक वैद्य या डाक्टर रोगी का रोग दूर करने के अभिप्राय से उसके शरीर में चीर फाड़ करता है, नश्तर आदि लगाता है। इसमें हिंसा दोष नहीं होता। राजा या न्यायाधीश एक ऐसे अपराधी को जिसने मनुष्य हत्या की है, मृत्युदण्ड देता है। यह न्याय का कार्य है, हिंसा दोष नहीं है।

(२) सत्य- सत्य का बड़ा महत्त्व है। मनु जी ने कहा है- 'न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्' अर्थात् सत्य से बड़ा कोई दूसरा धर्म नहीं है और अनृत वा झूठ से बड़ा पाप नहीं। यदि व्यक्ति सत्य का व्यवहार न करके झूठ बोले, दूसरों को धोखा देवे तो समाज का व्यवहार नहीं चल सकता। शास्त्र में कहा है कि-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

(अर्थ) सत्य बोले किन्तु प्रिय वचन बोले। असत्य प्रिय वचन भी न बोले। यह सनातन धर्म है। परन्तु आवश्यकता होने पर अप्रिय सत्य बोलना भी प्रशंसनीय होता है। महाभारत में कहा गया है–

पुरुषाः बहवो राजन्! सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

हे युधिष्ठिर! ऐसे पुरुष बहुत होते हैं, जो सदा प्रिय वचन बोलते हैं, पर अप्रिय और हितकारी वचन के बोलने और सुनने वाले दुर्लभ होते हैं।

बोलने में अत्युक्ति करना भी दोष है। बहुत से लोगों का ऐसा अभ्यास पड़ जाता है। वे उसको दोष नहीं समझते, यदि किसी स्थान पर एक या दो सौ मनुष्य जमा हों तो ऐसे अभ्यास के लोग कहेंगे कि हजारों मनुष्य जमा थे।

सत्य के अपवाद हो सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी रोगी को क्षय आदि कठिन रोग हो जाये तो डॉक्टर या वैद्य यदि उससे पूरा सत्य हाल कह देवे तो संभव है उसका रोग बढ़ जावे। उससे पूरा हाल न कह कर उसकी सेवा वा शुश्रूषा करने वाले से अवश्य सत्य बात कह देनी चाहिये। इस प्रकार के और भी अपवाद हो सकते हैं।

(३) अस्तेय– अस्तेय या चोरी त्याग भी समाज की सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि एक व्यक्ति दूसरे का धन अपहरण कर लेवे तो समाज में घोर अव्यवस्था हो जाये। चोरी के सिवाय अन्य प्रकार से भी दूसरे मनुष्य का धन अपहरण करना स्तेय दोष है जैसे छल करके धन प्राप्त करना। जुए से धन प्राप्त करना भी अस्तेय धर्म का भंग करना है, इसलिए शास्त्रों में जुआ खेलना पाप माना गया है। किसी प्रकार भी यदि एक मनुष्य दूसरे से ऐसा धन लेता है जिसका उसको न्यायपूर्वक अधिकार नहीं, वह पाप करता है। जैसे जमींदार का किसान से उचित या नियत लगान से अधिक धन लेना इत्यादि।

(४) ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य का समाज की रक्षा के लिए ऐसा ही महत्त्व है जैसा अस्तेय धर्म का। चोरी व जारी समाज की हानि की दृष्टि से एक समान घोर पाप हैं। मनुस्मृति में ८ प्रकार के काम का वर्णन करके ब्रह्मचर्य के पालन का श्रेयमार्ग बतलाया गया है।

(५) अपरिग्रह– अपरिग्रह धर्म का यह अभिप्राय है कि अपनी आवश्यकता से अधिक धन या सम्पत्ति ग्रहण न करना वा न रखना। यदि किसी मनुष्य को उसके परिश्रम व उद्योग के बिना छल वा पाप किये इतना धन प्राप्त हो जाये, जो उसके जीवन की आवश्यकताओं से अधिक हो, तो उसका कर्तव्य है कि जिनता धन अधिक है, उसको दीन व दुखिया मनुष्यों की धरोहर के समान समझे, और उसको

समाज में रहकर मनुष्य को कुछ ऐसे धर्मों को पालन करना आवश्यक होता है जिससे समाज के अन्य व्यक्तियों के रहन–सहन व सुख में बाधा न पड़े। ऐसे धर्मों का शास्त्रों में 'यम' नाम रखा गया है।

ऐसे कार्यों में लगावे जिससे उनके दुःखों की निवृत्ति हो, जैसे कूप, तालाब, धर्मशाला व पाठशाला आदि का बनाना। अथवा उस अधिक धन को सुपात्रों को दान कर देवें, कुपात्रों को नहीं। विद्या का दान सबसे अच्छा है। मनु जी ने कहा है– सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।। अर्थात् सब दानों में विद्या दान की विशेषता है।

व्यक्ति धर्म के पालन की आवश्यकता

व्यक्ति समाज का एक अंग है। उसको समाज से अनेक प्रकार की सहायता मिलती है, जिसके बिना उसका जीवन निर्वाह भी संभव नहीं। इसलिए समाज के प्रति उसके कुछ कर्तव्य हो जाते हैं, जिनका शास्त्रों में यम नाम है, और जिनकी ऊपर व्याख्या की गई है।

परन्तु व्यक्ति का अपनी ओर भी महान् कर्तव्य है। उसका पृथक् आत्मा है, जिसकी सब प्रकार उन्नति करना उसका सबसे बड़ा धर्म है। आत्मा की सर्वोपरि उन्नति मोक्ष की प्राप्ति है, जो मनुष्य योनि में ही हो सकती है। यदि कोई मनुष्य इसके लिए उचित यत्न न करे तो उसने अपना मनुष्य जन्म वृथा गंवाया। केनोपनिषद् में कहा है–

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

अर्थ– यदि इस जन्म में ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर लिया तो ठीक है। यदि इस जन्म में ज्ञान प्राप्त न किया तो भारी विनाश है अर्थात् जन्म ही व्यर्थ गया। इसलिये विचारशील मनुष्य सब भूतों में व्यापक उस परमात्मा को जान कर इस लोक को छोड़ते समय अमर हो जाते हैं अर्थात् मोक्ष को पा लेते हैं।

इसलिए व्यक्ति धर्म का पालन भी मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उन धर्मों का नाम शास्त्रों में नियम रखा गया है। योगदर्शन में ५ नियम इस प्रकार बतलाये गये हैं– 'शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वप्रणिधानानि नियमाः।।' अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये ५ नियम हैं। इनकी भी संक्षेप से व्याख्या करनी आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि ये सब धर्म ऐसे हैं जिनके पालन बिना व्यक्ति का सुधार व उन्नति नहीं हो सकती है। समाज के लिए इनकी उतनी आवश्यकता नहीं है।

व्यक्ति का अपनी ओर भी महान् कर्तव्य है। उसका पृथक् आत्मा है, जिसकी सब प्रकार उन्नति करना उसका सबसे बड़ा धर्म है। आत्मा की सर्वोपरि उन्नति मोक्ष की प्राप्ति है, जो मनुष्य योनि में ही हो सकती है। यदि कोई मनुष्य इसके लिए उचित यत्न न करे तो उसने अपना मनुष्य जन्म वृथा गंवाया।

---

(१) शौच– अर्थात् शुद्ध रहना हर मनुष्य के लिए परमावश्यक है। अंग्रेजी में एक कहावत है– Cleanliness is next virtue) अर्थात् सफाई रखने का दर्जा धर्म के तुरन्त बाद ही है। इसके अनुसार धर्म के पीछे शौच को स्थान दिया गया है। शरीर की शुद्धि स्नान से होती है। मनुस्मृति में लिखा है–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

अर्थः– शरीर के अंग, अवयव जल से शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है। भूतात्मा विद्या व तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

(२) सन्तोष– सन्तोष के लिये योगदर्शन २/४२ में कहा है– सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः।। अर्थात् सन्तोष से सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है। वास्तव में जिस मनुष्य को सन्तोष नहीं, वह सर्वदा दुःखी रहता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रारब्ध का सहारा लेकर उद्योग न करना और यह समझना कि जो प्रारब्ध में है वह निश्चय होकर रहेगा। यह सन्तोष नहीं, किन्तु आलस्य व प्रमाद है। किसी कवि का वचन है–

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।

अर्थ– जो पुरुष सिंह के समान वीर और उद्योगी होता है, उसको लक्ष्मी अर्थात् धन व सम्पत्ति प्राप्त होती है। ये वचन कायर लोग कहा करते हैं कि प्रारब्ध से ही मिलता है। प्रारब्ध का सहारा छोड़कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ करो। यदि यत्न करने पर भी सफलता न हो तो फिर दोष क्या है?

सन्तोष का तात्पर्य यह है कि अपनी योग्यता वा सामर्थ्य के अनुसार कर्म करे। उससे जो प्राप्ति होती हो उस पर सन्तुष्ट रहे। यदि पड़ोसी को उससे अधिक प्राप्ति होती है तो उससे डाह वा ईर्ष्या न करे।

(३) तप– तप का अभिप्राय यह है कि अपने शरीर व मन को ऐसा दृढ़ बनावे की भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, दुःख–सुख आदि सहने की शक्ति रहे। गीता के अ० १७ में श्रीकृष्ण जी ने शारीरिक, वाङ्मय व मानस– त्रिविध तप की व्याख्या की है और सात्त्विक, राजस, तामस तीन प्रकार के तपों का भी सुन्दर विवरण दिया है, जिसको जिसकी इच्छा हो, वहीं देख लेवें। आजकल कुछ नाम मात्र के साधु अग्नि के बीच में बैठकर या धूप में खड़े होकर इत्यादि ऐसी क्रियाएं इस प्रकार से किया करते हैं कि लोग उनको सिद्धियाँ समझ कर उनको धन आदि देंवे। श्रीकृष्ण जी ने उनको राजस व तामसिक तप बतलाकर उनकी निन्दा की है। अ० १७ के श्लोक १८ व १६ नीचे दिये जाते हैं–

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।१८।।
मूढ़ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्।।१९।।

अर्थ– अपना सत्कार, मान वा पूजा कराने के लिये, वा दम्भ भाव से प्रशंसा कराने के लिए जो तप किया जाता है, वह राजस (रजोगुण) तप है, वह उत्तम या स्थायी फल देने वाला नहीं। मूर्खता के भाव से जो अपने को पीड़ा देकर तप किया जाता है वा दूसरे मनुष्य को हानि पहुंचाने के निमित्त किया जाये, वह तामस (तमोगुण) तप का उदाहरण है।

(४) स्वाध्याय– स्वाध्याय से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है। गुरुकुल छोड़ते समय स्नातक को जो उपदेश गुरु द्वारा दिया जाता है उसमें– 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' कहा गया है। अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद (वा आलस्य) न करना। फिर दोबारा 'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' अर्थात् स्वाध्याय व प्रवचन में प्रमाद न करना कहा गया है। ये वचन तैतिरीय उपनिषद् में है। केवल ब्रह्मचारी व स्नातकों के लिए ही स्वाध्याय की आवश्यकता न समझी जाये, इस अभिप्राय से उसी उपनिषद् में विस्तार के साथ उपदेश है जिसका कुछ भाग नीचे दिया गया है–

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।।

अर्थात् सत्य ज्ञान के साथ स्वाध्याय व प्रवचन होना चाहिए। अतिथियों के साथ स्वाध्याय व प्रवचन होना चाहिए। सन्तान उत्पन्न करते हुए और उनका पालन करते हुए स्वाध्याय व प्रवचन होना चाहिए। इत्यादि।

(५) ईश्वर प्राणिधान– यह नियम बड़े महत्त्व का है।

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

अमको-सिमको बलिदान दिवस २५ अप्रैल

समय के अँधेरों में खो गई बलिदान गाथा

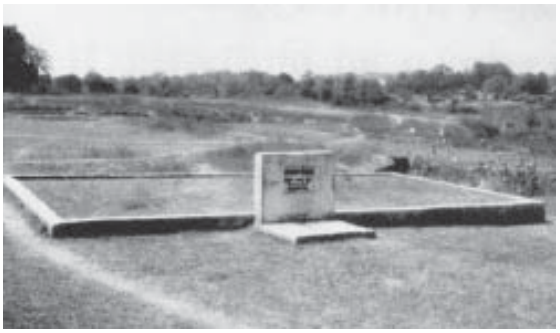

❑सतीश शर्मा

स्वाधीनता संग्राम के दौरान देश के अलग-अलग क्षेत्रों में लोगों ने अपने-अपने तरीके से आंदोलन चलाया और कुर्बानियाँ दीं। इनमें से कई बलिदान गाथाओं, आंदोलनों को इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में स्थान मिला, कुछ एक के सामान्य उल्लेख हुए; पर अनेक बलिदान गाथाएँ समय के अँधेरों में यूँ ही खो गई, विशेषकर पिछड़े, वनवासी और रजवाड़ों के इलाकों में हुए आंदोलनों को इतिहास में समुचित स्थान नहीं मिला।

सन् १९१९ में पंजाब के जलियांवाला बाग में घटित नरसंहार जैसी मिसालें बहुत कम हैं, परंतु ऐसे ही नरसंहार और भी स्थानों पर हुए जिनसे देशवासी परिचित नही हैं। ऐसी घटनाओं में एक अमको-सिमको गोलीकांड व नरसंहार की घटना है, जिसके संबंध में आज ७४ वर्ष बाद भी पूरी जानकारी नहीं है। इस गोलीकांड में ४० से अधिक वनवासी शहीद हुए थे और सैकड़ों घायल। यह निर्मम व क्रूर गोलीकांड जलियांवाला बाग घटना के बीस वर्ष बाद २५ अप्रैल, १९३९ को उड़ीसा झारखंड सीमा पर स्थित राएबोगा थाना अंतर्गत अमको-सिमको गाँव (राउरकेला से लगभग ५० किलोमीटर दूर) में घटित हुआ था।

उस दिन वहाँ स्वर्गीय निर्मल मुंडा के नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने हेतु एक बड़ी सभा का आयोजन किया गया था। उस जनसभा पर ब्रिटिश पुलिस ने गोलियों की वर्षा कर चालीस से अधिक लोगों को मृत्यु के हवाले कर दिया था। ब्रिटिश पुलिस वास्तव में इस आंदोलन के प्रणेता निर्मल मुंडा को गिरफ्तार करने के उद्देश्य से आई थी, परंतु उपस्थित जनसमूह ने पुलिस को कोई सहायता नहीं दी तो इससे क्षुब्ध होकर पुलिस ने इस वहशियाना कांड को अंजाम दिया।

वनवासियों द्वारा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए शुरू किए गए इस आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर पर उतना महत्त्व नहीं मिला जितने का यह हकदार था। तत्कालीन गंगापुर राज्य (वर्तमान सुंदरगढ़ जिले का हिस्सा) में प्रारंभ हुए इस आंदोलन के पीछे वनवासियों की भूमि और सामाजिक अधिकारों पर राज्य का बढ़ता दबाव मुख्य कारण था। इस क्षेत्र में पहले जिस भूमि पर कर नहीं लिया जाता था, उस पर कर लगाने की व्यवस्था के विरुद्ध वनवासियों में आक्रोश फैला था। सन् १८६५ में पूरे क्षेत्र का राजस्व ५२०० रुपए था। सन १९०० में यह बढ़कर ४७७०० रुपए और फिर सन् १९११ में हुए पहले भूमि बंदोबस्त में राजस्व ६४२५७ रुपए तय कर दिया गया।

पहले गंगापुर रियासत की गोड्डा भूमि पर कर नहीं लगता था परंतु सन १९३५ के नए भूमि बंदोबस्त के बाद गोड्डा भूमि पर भी कर लगाने का निर्णय किया गया और सन १९३७ से इसका भुगतान बाध्यकारी कर दिया गया। सन् १९२३-२४ में भूमि राजस्व १,१०,२५७ रुपए, सन १९३२ में १,४९,८६१ रुपए कर दिया गया। मुंडा वनवासियों ने गांगपुर राज्य के इस निर्णय के विरुद्ध सन १९३५ में गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि को एक पत्र लिखा। स्वर्गीय निर्मल मुंडा इस आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे। इन लोगों ने पत्र में गोड्डा भूमि पर प्रस्तावित कर में कमी करने के साथ छोटा नागपुर अंचल में प्रचलित खुंटकटी कानून को यहाँ भी लागू करने की मांग की। सन १९३८ में यह आंदोलन पूरे गांगपुर राज्य में फैल गया। इसे कुचलने के लिए गांगपुर राज्य ने निर्मल मुंडा को गिरफ्तार करने का निर्णय किया और इसी के क्रम में वनवासियों पर दमनचक्र प्रारंभ हुआ।

इसके प्रतिवाद में तथा अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने के लिए २५ अप्रैल, १९३९ को सिमको गांव में एक जनसभा का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर गांगपुर पुलिस, रानी जानकी रत्ना साहिबा के निर्देश पर निर्मल मुंडा को गिरफ्तार करने सिमको गांव पहुंची। गांगपुर राज्य ने इसमें ब्रिटिश पुलिस की मदद ली। इस जनसभा में तीन हजार से अधिक लोग एकत्रित हुए थे। ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट ले० ई० डब्लयू० एम० मार्जर के नेतृत्व में पुलिस दल वहाँ पहुँचा और उन्होंने तीन ओर से घेराबंदी कर दी।

पुलिस वास्तव में निर्मल मुंडा को गिरफ्तार करने के उद्देश्य से सिमको पहुँची थी। इस बात का पता चलते ही लोग बेचैन हो गए और उन्होंने अपने नेता को बचाने का निर्णय कर लिया। पुलिस ने जब लोगों से निर्मल मुंडा के बारे में पूछा तो लोगों ने स्वयं को निर्मल मुंडा कहा। इससे क्षुब्ध होकर ले० मार्जर ने जबर्दस्ती निर्मल मुंडा के घर में घुसने का प्रयास किया तो एक युवा लड़के मानिया मुंडा ने उस पर लाठी से प्रहार कर दिया। एक पुलिस वाले ने तत्काल उसके पेट में राइफल की संगीन घुसेड़ दी, जिससे वह वहीं ढेर हो गया। इसके बाद ब्रिटिश पुलिस ने निहत्थे वनवासियों पर गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं।

पुलिस फायरिंग से ४० लोग शहीद हुए और सैंकड़ों लोग घायल हुए। पुलिस के भय से वनवासी जंगलों में भाग गए और वहाँ अनेक लोग जंगली जानवरों के शिकार हो गए। पुलिस ने निर्मल मुंडा व अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। ये लोग १५ अगस्त, १९४७ को जेल से रिहा हुए। वनवासियों के इस बलिदान दिवस की स्मृति को बनाए रखने के लिए चंद स्थानीय वनवासी कार्यकर्ता, पूर्व विधायक स्वर्गीय धनंजय महांति, स्वर्गीय प्रो० डी० एन० सिंह, भाजपा नेता किशुन साहू, महावीर अग्रवाल जैसे लोग इन शहीदों को सरकारी मान्यता दिलाने के लिए प्रयास करते रहे हैं, पर नतीजा कुछ नहीं निकला है।

पूर्व सांसद फ्रिढ़ा टोपनो ने यहाँ स्मारक बनाने के लिए २२ लाख रुपए स्वीकृत किए थे। उन पैसों से यहाँ कुछ उन्नति के कार्य हुए। पर आज इसका स्वरूप बिगड़ा हुआ है। यहाँ लगाई गई प्रस्तर शिला के इर्द-गिर्द पेड़-पौधे उग आए हैं, बिजली यहाँ है नहीं।

इस आंदोलन को सरकारी मर्यादा दिलाने के लिए संघर्षरत बिरसा मुंडा प्रतिमा समिति के अध्यक्ष बिजय टोपो ने मुख्यमंत्री नवीन पटनायक को पत्र लिखकर वनवासियों की बलिदान गाथा एवं निर्मल मुंडा को समुचित सम्मान दिलाने हेतु कार्रवाई करने की मांग की। ज्ञातव्य है कि भारत की स्वाधीनता के रजत वर्ष १९७२ में तत्कालीन प्रधानमत्री इंदिरा गांधी ने निर्मल मुंडा को स्वाधीनता सेनानी के रूप में ताम्रपत्र प्रदान किया था। सन् २००१ से इस बलिदान को अर्द्ध सरकारी मान्यता मिली। स्थानीय स्तर के छोटे अधिकारी २५ अप्रैल को आयोजित होने वाले समारोह में शिरकत कर एक औपचारिकता भर निभा देते हैं, परंतु आज ७४ वर्ष बाद भी इस बलिदान दिवस को वह मान्यता नहीं मिली है, जो इसे मिलनी चाहिए। वनवासियों का यह आंदोलन, उनका बलिदान अनुसंधान का विषय है। इस ओर सरकार कोई कार्रवाई करे और इस आंदोलन से जुड़े सारे तथ्यों को सामने लाए तो यही अमको-सिमको गांव में शहीद लोगों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। (सीनियर इण्डिया)

आइये बदलें

❑डॉ० कैलाश निगम

लग गई चन्दन वनों में आग
जल रही मधुगन्ध की दुनिया
स्वर्ण मृग के लिए भागे फिर रहे हैं हम
एक मायाजाल में नित घिर रहे हैं हम
हाथ में आदर्श की ऊँची ध्वजायें पर
लोभ के अंधे कुयें में गिर रहे हैं हम
दब रही सिक्कों तले आवाज
घुट रही आनन्द की दुनिया
बिम्ब हैं विकलांग दर्पण में भविष्यत् के
आग, आँसू दे गये कागज वसीयत के
पाप से गंगा प्रदूषित कर रहे, ऐसे
जनविरोधी वंशधर जन्मे भगीरथ के
गल रहे संकल्प के हिमवान
चुक रही अनुबंध की दुनिया

इस धरा पर स्वर्ग के सपने दिखाते हैं
नींव में बालू भरी घर थरथराते हैं
झूठ के हर कारवाँ में सच अकेला है,
अब न गौतम और गाँधी याद आते हैं
है उपेक्षित लोकहित बलिदान
फल रही जयचन्द की दुनिया
नग्नता सौन्दर्य की अब मान्य भाषा है
लोचनों में भोग की जलती पिपासा है
लाभ ही आधार है जब नेह नातों का
ढूंढना संस्कृति वहाँ केवल दुराशा है।
आइये बदलें समय की धार
छोड़ कर भुजबन्ध की दुनिया

४/५२२, विवेक खण्ड-४ गोमतीनगर, लखनऊ

कहानी

दीक्षा

❑रामफल सिंह आर्य,
८७/एस-३, बी एस एल कालोनी, सुन्दरनगर

गंगा ने चलते-२ अपने आंचल के कोने से माथे पर बहता पसीना पोंछा और चलने की गति को भी बढ़ाया। आज तो गर्मी भी बहुत थी, सुबह से मानो आसमान से आग बरस रही थी। वह प्रतिदिन की भांति आज भी अपने पति के लिये दोपहर का खाना लेकर जा रही थी। उसका पति रामदीन शहर में बन रहे इंजिनियरिंग कालेज में सुपरवाईजर का काम कर रहा है। वह सुबह-२ घर से जल्दी निकल जाता है तभी जाकर कार्य स्थल पर दिन में चलने वाले कार्य की योजना बना कर उसे पूरा संभाल पाता है। घर में दो छोटे-२ बच्चे हैं। गंगा तो सारा दिन उनमें ही उलझी रहती है। एक गाय भी रखी है जिसका सारा कार्य प्रातःकाल में ही करना पड़ता है। दोपहर के समय दोनों बच्चों को पास में रहने वाली सोमा चाची के घर पर छोड़ कर वापस लौटते समय खेत से गाय के लिये चारा आदि भी ले आती है। उसे घर लौटते-२ तीन बज जाते हैं। फिर आकर बच्चों को संभालना, गाय के लिये चारा काट कर डालना और घर के अन्य कार्य करते-२ सांयकाल हो जाता है। --तो फिर भोजन बनाने की तैयारी। एक चक्र में बंधा उसका जीवन चल रहा है। वह अपनी गृहस्थी में इतनी रम गई है कि अन्य किसी कार्य के लिये उसके पास समय ही नहीं है। उसकी मां भी शिकायत करती रहती है कि कभी मायके में भी समय निकाल कर आ जाया करे, परन्तु वह इतनी व्यस्त रहती है कि वहाँ भी बहुत दिनों में चक्कर लगता है।

आज जब गंगा भोजन लेकर जा रही थी तो महिलाओं का एक जलूस जा रहा था। सबने अपने सिर पर एक जैसे कलश रखे हुए थे और गीत गाती जा रही थी। जलूस के पीछे एक भव्य रथ पर उनके गुरु जी विराजमान थे। रथ को बहुत सुन्दर ढंग से फूल मालाओं से सजाया हुआ था और सिंहासन के रूप में एक ऊंचे स्थान पर सुसज्जित आसन पर विद्यमान गुरु जी की छवि दर्शनीय थी। लकदक करते रेशमी वस्त्रों में उनका गौरवर्ण अत्यन्त शोभा पा रहा था। मुखमण्डल पर खिंची हल्की सी मुस्कान की रेखा माथे पर चन्दन का तिलक रह-२ कर चरण स्पर्श करने आने वाले भक्तों पर पुष्प वर्षा करते हुए गुरुजी मानो साक्षात् देवता दिखाई देते थे। उनका आशीर्वाद पाने के लिये लोगों में एक होड़ सी लगी हुई थी। उनके पैरों के पास एक टोकरा पुष्पों का था तो दूसरी ओर एक टोकरा और भी था जिसमें भक्तों द्वारा चढ़ाया गया रुपया भरा हुआ था। सौ, पांच सौ और हजार के नोटों से भरे टोकरे में कोई-२ अति श्रद्धावान् व्यक्ति सोने चांदी के आभूषण भी चढ़ा जाता था। श्रद्धा का यह समुद्र शहर से गुजरता हुआ बड़ी आन, बान और शान से आगे बढ़ रहा था।

इस भव्य समारोह को देख कर गंगा के मन में भी श्रद्धा के भाव जगे और उसने सोचा कि कितना अच्छा होता यदि वह भी उन अन्य महिलाओं की भांति इस विशाल जलूस में सम्मिलित होती। वह भी गुरुजी के सत्संग का लाभ उठा पाती। उसका जीवन भी धन्य होता और अपना जन्म सफल बना लेती। भारत की महिलाओं में श्रद्धा स्वाभाविक रूप से निहित रहती है। जहाँ भी किसी धार्मिक कृत्य का कोई रूप देखा, वहीं पर सिर झुका देती हैं। आज जितने भी आश्रम, डेरे, मन्दिर या सत्संग चलते हैं उनमें महिलाओं की संख्या ही अधिक रहती है। शिक्षित क्या और अशिक्षित क्या! इस एक बिन्दु पर आकर उनमें एकता हो जाती है। अन्य विषयों पर महिलाओं में मतभेदों की भरमार रहती है, परन्तु किसी गुरु, डेरे या धर्म के नाम पर वे उदार हो ही जाती हैं। यह भी सत्य है कि जिस महात्मा के पीछे महिलायें लग जाती हैं वह सफल अवश्य हो जाता है। न उसे धन का अभाव रहता है न अन्य भोग्य पदार्थों का। बस! श्रद्धा का विचार गंगा के मन भी आज घर कर चुका था। पति को भोजन कराते समय भी उसने आज के भव्य समारोह का गुणगान उनके आगे कर दिया और अपनी इच्छा भी व्यक्त कर दी। पति ने भोजन करते-२ कहा कि तुम्हारे पास इन कार्यों के लिये समय ही कहाँ हैं? ये तो सब अमीर महिलाओं का कार्य है। वे उस महात्मा पर रुपयों की वर्षा कर रही थीं तुम्हारे पास पेट पालने को ही नहीं है।

'नहीं जी, नहीं! अमीर क्या, गरीब क्या? वहाँ तो सभी थीं। क्या गरीबों की पूजा को, श्रद्धा एवं प्रेम को गुरुजी स्वीकार नहीं करेगें? मुझे तो इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनके शान्त एवं प्रेममय मुख को देखकर क्या कोई कह सकता है कि वे इतने महान् व्यक्ति होकर भी छोटे बड़े का भेदभाव करेगें।' गंगा ने तर्क किया। रामदीन ने जान लिया कि नारी की जिद के सामने तो नारायण भी नतमस्तक है फिर उसकी भला क्या गाथा! बोला, 'ठीक है, जैसा तुम्हें उचित लगे कर लो, परन्तु बाद में मुझे दोष मत देना।' गंगा अपनी विजय पर मन ही मन मुस्कुरा उठी।

सारा कार्य निपटा कर पड़ोस की कई महिलाओं से

पूछा कि वे महात्मा जिनकी आज सवारी निकली थी, कहाँ पर हैं? उनका कार्यक्रम कहाँ चल रहा है और उसका समय क्या है?' एक महिला जो गुरुजी से जुड़ी थी, उसने गुरु के चित्र वाला एक पत्रक जिसमें सारा विवरण था, गंगा को दे दिया। वह बहुत शिक्षित तो न थी, परन्तु पढ़ने-लिखने की योग्यता तो रखती ही थी। पत्रक को लेकर कई बार पढ़ा और एक पंक्ति पर आकर बार-२ रुक जाती और किसी गहन विचार में निमग्न हो जाती। पंक्ति थी- 'गुरुजी ने अपार साधना के बल पर सबके दु:ख हरने की महान् शक्ति प्राप्त की हुई है और जो कोई उनके पास सच्चे मन से जाता है, उसकी सर्व कामनायें अवश्य पूर्ण होती हैं।'

बस फिर क्या था! गंगा के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा का समुद्र उमड़ आया। सायंकाल पड़ोस की पत्रक देने वाली महिला के साथ वह सत्संग के स्थान में जा पंहुची। पण्डाल की भव्यता को देखकर वह दंग रह गई। इतनी सुन्दर व्यवस्था की तो उसने कभी कल्पना भी न की थी। पण्डाल में बिछे गलीचे पर पांव रखते ही दो ईंच तक अन्दर धंस गया, वह गिरते-२ बची। चारों ओर जगमगाती प्रकाश व्यवस्था, स्थान-२ पर लगे विशाल टैलीविजन, फूल मालाओं से सजा मंच, उसके ऊपर एक भव्य सिंहासन- जिसके ऊपर विराजमान गुरुजी और उनकी सेविकायें। भगवां वस्त्रों में सेविकाओं का सौन्दर्य और भी निखर उठा था। ध्वनि यन्त्रों के माध्यम से गुरु का उपदेश इतना स्पष्ट सुनाई देता था मानो बिल्कुल पास में ही बैठे हैं।

आज गुरुजी का प्रवचन संसार की असारता पर था। वे बोल रहे थे- 'जितने भी पदार्थ संसार में हैं, वे केवल बन्धन का कारण हैं। हम उन्हें प्राप्त करने में ही जीवन का बहुत सा समय नष्ट कर देते हैं, जबकि वास्तविक वस्तु तो भगवान का आनन्द है और उस आनन्द तक पहुँचने का मार्ग गुरु है। गुरु के बिना गति नहीं हो सकती। जो बेगुरे हैं वे तो मर कर कीड़ों के कुण्ड में पड़ेंगे। परन्तु जो गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रख कर उसके करकमलों से दीक्षित होते हैं उनकी समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं और मरने के उपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसलिये धन-संग्रह करने में अपने जीवन को नष्ट न करो। सोचो! साथ क्या लाये थे और क्या ले जाओगे? जब गुरु भगवान से भी बढ़ कर है तो फिर सर्वस्व गुरु को अर्पित करने में भला क्या चिन्ता? याद रखो! जो गुरु से भी धन को बचाता है वह परलोक में भला क्या सुख पायेगा!'

गुरुजी के व्याख्यान के पश्चात् तो दीक्षा लेने वालों का तांता लग गया। कोई ग्यारह सौ की, कोई इक्कीस सौ की, कोई इकतीस सौ की और कोई-२ तो ग्यारह हजार या इससे भी अधिक की दीक्षा ले रहा था। कुछ भक्तनियां पास में खड़ी होकर रूपये संभाल रही थीं। कुछ गुरुजी को फूल एवं अन्य मालायें आदि दे रही थीं, जिन्हें वे अपने हाथों से भक्तों को बांट रहे थे। गंगा यह सारा दृश्य देखकर सोच रही थी कि काश! वह भी दीक्षा ले पाती। प्रवचन सुनने का सौभाग्य तो मिला, परन्तु दीक्षा? वह तो बिना पैसे के नहीं मिलनी।

रात्रि को घर पर वह रामदीन से फिर उलझ पड़ी, 'देखो जी! कुछ करके कम से कम ग्यारह सौ रुपये का प्रबन्ध करो। मुझे गुरुजी से दीक्षा लेनी है। अच्छा हो यदि हम दोनों ही दीक्षा लेने चलें। आपके बिना मेरी भी भला क्या गति?' रामदीन बोला, 'भाग्यवान् मुझे तो सारा दिन काम से ही छुटकारा नहीं है, और फिर ग्यारह सौ रूपये भला मैं कहाँ से लाऊँ? घर का खर्च ही बड़ी मुश्किल से चलता है। देखो तुम ये दीक्षा-वीक्षा रहने दो। यह हमारे वश का कार्य नहीं है।' परन्तु फिर नारी जिद आड़े आ गई। रामदीन को हथियार डालने पड़े। वह प्रात: काल उठकर किसी से रूपये उधार ले आया और गंगा की हथेली पर रख दिये। रूपये क्या मिले, गंगा को मानो संसार की सारी सम्पत्ति मिल गई। सायंकाल तक का समय बड़ी मुश्किल से कटा। सायंकाल को वह जैसे तैसे भीड़ मे घुस कर मंच के पास स्थान पाने में सफल हो ही गई। आहा! समीप से देखने पर तो गुरुजी के चमकते मुखमण्डल की शोभा ही निराली थी। वह टकटकी लगाये उन्हें देखती रही। समीप होने के कारण उसके ऊपर गुरुजी की दृष्टि कई बार पड़ी। जब भी गुरुजी ने उसे देखा तो गंगा की आंखों में एक विचित्र सी चमक आ गई और श्रद्धा से उसका रोम-२ पुलकित हो उठा। जैसे ही व्याख्यान समाप्त हुआ और दीक्षा लेने की घोषणा की गई वह सबसे पहले जाकर उनके सामने खड़ी हो गई। जब दीक्षा लेते समय उसने गुरुजी के चरणों में मस्तक रखा तो गुरुजी उसकी छवि देखते रह गये। गदराया यौवन, गोरा रंग, मोहिनी सूरत, देखकर गुरुजी क्षण भर को हतप्रभ से रह गये। सत्य है गरीब की सुन्दरता उसके वस्त्रों में छुपाये नहीं छुपती। साथ में गंगा की आखों में असीम श्रद्धा का भाव देखकर गुरुजी ने बड़े प्रेम से उसके सिर पर हाथ रखा। गंगा के तन में एक विद्युत् सी कौंध गई। स्पर्श पाकर वह धन्य हो गई। गुरुजी ने पास खड़ी शिष्या को कुछ संकेत किया। गंगा दीक्षा लेकर एक ओर हुई तो कुछ समय के उपरान्त उस शिष्या ने कहा, 'देखो तुम्हारे ऊपर गुरुजी की विशेष कृपा दृष्टि हुई है।' गंगा को लगा कि वह हवा में उड़ रही है। वह सोच में पड़

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने से ही सच्ची शांति मिलेगी

❑डॉ० विवेक आर्य, शिशु रोग विशेषज्ञ drvivekarya@yahoo.com

एक समूह कहता है- ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है, दूसरा समूह कहता है कि ईश्वर का अस्तित्त्व तो है परन्तु वह धरती पर कभी नहीं आता, वह चौथे अथवा सातवें आसमान पर रहता है। तीसरा समूह कहता है कि ईश्वर का अस्तित्त्व भी है और वह धरती पर भी आता है- अवतार के रूप में। चौथा समूह कहता है ईश्वर की कोई अलग सत्ता नहीं है अपितु मनुष्य अपनी उन्नति से ही ईश्वर बन सकता है। पांचवाँ समूह उससे भी आगे बढ़ गया। वह कहने लगा कि मनुष्य की अलग से कोई सत्ता ही नहीं है, अपितु सब कुछ ईश्वर है और यह जगत् मिथ्या है।

हे ईश्वर! आपके विषय में समाज में कितनी भ्रान्तियाँ हैं? सकल मनुष्य जाति आपकी संतान है, आप ही के द्वारा पालित है और अपने ही परमपिता के विषय में इतना अज्ञान। इसी अज्ञान के चलते आपके बच्चे आपस में लड़ते रहते हैं, संघर्ष करते रहते हैं, अशान्त हैं। हर कोई अपनी मान्यता को श्रेष्ठ और सत्य मानता है और दूसरे की मान्यता को निकृष्ट एवं असत्य मानता है। ईश्वर के विषय में कितनी कल्पनायें मनुष्य ने कर ली हैं और इनमें कितना सत्य होने की सम्भावना है। आइये, इस पर विचार करते हैं।

ईश्वर को न मानना-- प्रमाण और तर्क की कसौटी पर सही नहीं उतरता और न ही इस विचार से विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। यह अटूट नियम से चलने वाली सृष्टि, मनुष्य और अन्य प्राणियों का जन्म-मृत्यु चक्र-- मनुष्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को ग्रहण करने वाली बुद्धि, यह सब व्यवस्था स्वयं से संभव नहीं हो सकती। संसार चक्र को चलाने वाली एक परम शक्तिशाली सत्ता, जो इस संसार की निर्माणकर्ता भी है, पालनकर्ता और विनाशकर्ता भी है उसका ही नाम ईश्वर है। उस ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने वाला मनुष्य असत्य कर्म में लिप्त नहीं होता और सत्य कर्म करते हुए अपना एवं सकल समाज का उपकार करता है। ईश्वर को न मानने वाला मनुष्य किसी भी प्रकार के पाप कर्म को करते हुए कभी पीछे नहीं हटेगा और ऐसा मनुष्य समाज में शांति तो कदापि स्थापित नहीं कर सकता।

ईश्वर चौथे अथवा सातवें आसमान पर रहता है-- यह मानने वाला समूह प्रथम तो ईश्वर की सर्वव्यापकता अर्थात् कण कण में व्याप्त होने के सिद्धांत का प्रतिरोध करता है। दूसरे इस समूह को मनुष्य और ईश्वर के मध्य एक मध्यस्थ की कल्पना करनी पड़ती है, जिसकी सिफारिश से अथवा जिस पर विश्वास लाने से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। इस कल्पना से ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने का सिद्धांत खण्डित हो जाता है। साथ ही अनेक स्थलों पर ईश्वर को मध्यस्थ पर निर्भर भी मानना पड़ता है। इस मान्यता से मानव निर्मित कल्पना को बल मिलता है। मध्यस्थ ईश्वर की तरह सम्पूर्ण और सर्वज्ञ नहीं हो सकता। उस पर निर्भर होने से ईश्वर विभिन्न विषयों में पक्षपातपूर्ण व्यवहार कर सकता है जो कि ईश्वर के स्वभाव के विपरीत है क्योंकि ईश्वर पक्षपातरहित है। ईश्वर को मध्यस्थ पर निर्भर मानने से समाज में भी गतिरोध पैदा होता है। यह समूह यह भी मानता है कि ईश्वरीय ज्ञान में बार बार परिवर्तन होता है, जबकि सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान सदा एक समान रहता है, वह घटता या बढ़ता नहीं है। ईश्वरीय ज्ञान का सबसे बड़ा गुण ही यह है कि वह सृष्टि के आरंभ में मनुष्य को प्राप्त होता है एवं सृष्टि के आरंभ से अंत तक उसमें परिवर्तन की कोई सम्भावना नहीं होती। बार बार ईश्वरीय ज्ञान में मनोवांछित परिवर्तन की मान्यता मनुष्य जाति में मतभेद उत्पन्न करती है और यही समाज में अशांति का कारण है।

तीसरे समूह की धारणा कि **ईश्वर अवतार लेता है** सत्य से अधिक कल्पना पर आधारित है। क्या ईश्वर पहले इस धरती पर विद्यमान नहीं था जो उन्हें अपने भक्तों की पुकार पर इस धरती पर अवतार लेकर आना पड़ा? ईश्वर का धरती पर आगमन किस प्रकार के कार्यों के लिए माना जाता है? जिन प्राणियों को ईश्वर ने ही जन्म दिया है उन्हीं का

संहार करवाने के लिये, लीला दिखाने के लिए। यह मान्यता ईश्वर के सर्वव्यापक अर्थात् हर जगह विद्यमान होने के सिद्धांत की अवमानना के साथ साथ मनुष्य को अकर्मण्य भी बनाती है क्योंकि विपत्ति काल में मनुष्य स्वयं पर भरोसा करने के स्थान पर ईश्वर के अवतार की प्रतीक्षा करने पर अधिक ध्यान देता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि कोई भी युद्ध वीरता और परिश्रम से जीता गया है, अवतार की प्रतीक्षा तो कायरों का काम है। भिन्न-भिन्न अवतारों की भिन्न-भिन्न लीला, भिन्न-भिन्न भक्ति, भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी मान्यतायें मानव जाति की एकता और अखंडता के लिये बाधक हैं और संसार में अशांति को बढ़ावा देती हैं।

चौथा समूह कहता है- ईश्वर की कोई अलग सत्ता नहीं है अपितु **मनुष्य अपनी उन्नति से ही ईश्वर बन सकता** है, यह भी कल्पना शास्त्र की उन्नति है। ईश्वर एक है और उनके गुण, कर्म और स्वभाव असीमित तो हैं, मगर अपरिवर्तनशील हैं। इस समूह की मान्यता पहले ईश्वर की सत्ता को नकारती हैं फिर अल्पज्ञ मानव को ईश्वर के स्थान पर बैठाती है। यह कल्पना भी संसार में अशांति को बढ़ावा देती है। अगर मनुष्य में ईश्वर बनने की संभावना है तो उस संभावना के मूल ज्ञान का स्रोत क्या है? ज्ञान की प्राप्ति अपने आप नहीं हो सकती जब तक उसे सिखाया न जाये। सृष्टि के रचना काल में ज्ञान का प्रदाता ईश्वर ही है, इसलिए ईश्वर की सत्ता को नकारना असंभव है। मनुष्य को भी वही ज्ञान प्राप्य एवं ज्ञात है जो मनुष्य के लिए उचित है, उससे भिन्न असीमित ईश्वरीय ज्ञान भी है जो ईश्वर के लिए ही है। उस ज्ञान तक तो मनुष्य का प्रवेश ही नहीं है फिर यह कल्पना करना की मनुष्य अपने जीवन में प्रगति करके, ज्ञान वान होकर ईश्वर बन सकता है, एक कपोल कल्पना अधिक प्रतीत होती है और मनुष्यों में विभेद उत्पन्न करती है।

पांचवें समूह का मानना है कि मनुष्य की अलग से कोई सत्ता ही नहीं है, अपितु सब कुछ ईश्वर है और यह जगत् मिथ्या है। आत्मा ईश्वर का ही अंश है एवं माया के कारण मनुष्य अपने आपको पहचान नहीं पा रहा है कि वह ईश्वर है। ईश्वर अविभाज्य है अर्थात् उसके अंश नहीं हो सकते, इसलिए आत्मा को ईश्वर का अंश मानना उचित नहीं है। अगर एक फल के अनेक टुकड़े किये जायें तो उसके हर टुकड़े में वही गुण रहता है जो उस फल में हैं तब तो ईश्वर के अंश अर्थात् आत्मा में भी ईश्वरीय गुण होने चाहिएँ। अगर ऐसा है तो ईश्वर को कभी भ्रम नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर अज्ञान से परे है तो फिर उसके अंश आत्मा को ऐसा भ्रम कैसे हो गया कि जगत् मिथ्या है। ईश्वर के अंश आत्मा में ईश्वर के समान सृष्टि की रचना, मनुष्य को जन्म देना आदि गुण भी क्यों नहीं हैं? अपने आपको ईश्वर मानने वाला समूह सकल जगत् को ब्रह्म मानकर, अपने आपको स्वप्न लोक में मानकर कर्म से विमुख हो जाता हैं। कर्महीनता अशांति को जन्म देती है। ईश्वर का ज्ञान मनुष्य को पुरुषार्थी अर्थात् श्रेष्ठ कार्यों में दिन-रात लगे रहते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है न कि कर्महीन होकर निठल्ले बैठने की।

इसलिए मनुष्य को आप्तपुरुषों के सत्संग और आर्ष ग्रंथों के स्वाध्याय द्वारा ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना चाहिए तभी उसकी भक्ति सफल हो सकती है और उसे सच्ची ईश्वरीय शांति का अनुभव हो सकता है।

हा! धन हावी हुआ हृदय पर

अब फैशन की है पौ बारह
लाज हो गई नौ दो ग्यारह
विज्ञापित हो रही नग्नता
मर्यादा आदर्श गए ढह

चाकचिक्य ने कर दी है हद
अवगुंठन हो गया नदारद
सुन्दरता का मानक है अब
कामिनियों का कामरूप कद

अब न पांव में बजती पायल
अब न नयन कर पाते घायल
कंचन काया का सौदा कर
'कैटवाक' करती अब मॉडल

अब न रह गई नाक कीर-सी
चीरहीन बाला अधीर-सी
खोज रही यौवन का ग्राहक
उठती कवि के हृदय पीर-सी

अब न रह गए छन्द मनोहर
अब कवियों ने दी है हद कर
पुरस्कार के पीछे पागल
हा! धन हावी हुआ हृदय पर

-महेशचन्द्र त्रिपाठी

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की प्रक्रिया

❑डॉ० सहदेव वर्मा
२४/४, बिशन सरुप कालोनी, पानीपत-१३२१०३

वेदों का अर्थ करने के लिए एक भिन्न तथा विशेष मार्ग का अवलम्बन करना होता है, विशिष्ट प्रक्रिया अपनानी होती है उसी के आधार पर वेदार्थ का प्रकाशन संभव है। स्वयं ऋषि ने इसी मार्ग का अवलम्बन कर वेदभाष्य को मानवोपयोगी बनाकर प्रस्तुत किया है।

वेदों में सभी सत्य विद्याएँ हैं, किन्तु उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ही है। ऋषि दयानन्द की रचनाओं और विशेष रूप से उनके वेद भाष्य से यह तथ्य भली भाँति समझा जा सकता है। उनके वेद भाष्य में केवल धर्म या अध्यात्म ही नहीं अपितु विज्ञान का भी यथासंभव बौद्धिक पुट मिलता है। इसके लिए उन्होंने जो भाष्य पद्धति अपनाई है उसकी अपनी विशेषताएँ हैं, जैसे उसमें प्राचीन साहित्य का यथावत् उपयोग करके वेदों की बुद्धिगत व्याख्या की गई है। स्वतंत्र रूप से वेदों की प्रकरण योजना की गई है, यौगिक प्रक्रिया अपनाकर तथा विशेषण-विशेष्य-भाव आदि पर दृष्टि रखकर वेदों के आधार पर सर्वांगीण धर्म का निरूपण किया गया है, साथ ही वैदिक आख्यानों का युक्तिसंगत तात्पर्य दिखलाया गया है। महर्षि के वेदार्थ की समस्त विशेषताओं पर विस्तार से विचार करना तो यहाँ संभव नहीं है। केवल उनके मूलभूत कार्यरूप प्राप्त करने वाले कारणों (उपादानों) पर ही विचार किया जाएगा जो इस प्रकार हैं:-

प्रथम :- विश्व कल्याण पर दृष्टि।
द्वितीय :- शास्त्र एवं बौद्धिकता का समन्वय।
तृतीय :- यौगिक प्रक्रिया की प्रधानता।

१ विश्व कल्याण पर दृष्टि :- महर्षि ने वेद भाष्य सप्रयोजन किया है। इस रचना का प्रयोजन बताते हुए वे कहते है- 'ईश्वर के अनुग्रह से सत्य प्रमाणों के आधार पर सत्य अर्थ से युक्त यह वेदभाष्य सब मनुष्यों के हित के लिये रचा जा रहा है। जिससे आधुनिक भाष्यों तथा टीकाओं के द्वारा वेदार्थ से विरुद्ध अर्थ दिखलाने के कारण वेदों को दूषित करने वाले आक्षेप दूर हो जायेंगे और वेदों का जो सत्य सनातन अर्थ है वह प्रकाशित हो सकेगा।' इस प्रकार अन्य स्थलों पर वेदभाष्य रचना का प्रयोजन मानव मात्र का उपकार ही बताया है। वेदभाष्य के सम्बन्ध में कुछ शंकाओं का समाधान भी किया है। जैसेः-

'इस वेदभाष्य की रचना का क्या फल होगा?

उत्तर :- 'जो रावण, उवट, सायण, महीधर आदि के द्वारा वेदार्थ से विरुद्ध भाष्य किये गये हैं, और जो उनके अनुसार इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि में उत्पन्न यूरोप खण्ड के निवासियों के द्वारा अपनी देश भाषा में स्वल्प व्याख्यान किये गये है तथा उसी प्रकार आर्यावर्त देश के कुछ जनों ने उनका अनुसरण करके जो लोक भाषाओं में व्याख्याएं की हैं या की जा रही हैं, वे सभी अनर्थपूर्ण है, यह सज्जनों के हृदय में यथावत् प्रकट हो जायेगा और उन टीकाओं के अधिक दोषों का ज्ञान होने से उनका त्याग कर दिया जायेगा।'

इस प्रकार भाष्य-रचना का प्रयोजन बतलाते हुए ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में तथा यथावसर वेदभाष्य में भी विविध वेद-व्याख्याओं के दोषों की ओर ध्यान दिलाया है। विश्वहित की भावना से ऋषि ने यह स्थापना की है कि वेद सर्वांगीण धर्म का द्योतक है। उनकी दृष्टि में यज्ञादि का अनुष्ठान ही धर्म नहीं है, अपि तु मनुष्य के सभी व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों को धर्म कहते हैं, अतः वेद लौकिक और पारलौकिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक सभी विद्याओं का मूल आधार है। ऋषि ने यह स्वीकार करते हुए कि मानवहितकारी समस्त विद्याओं का मूल वेद में है, इसके साथ ही धर्म, कर्म तथा आध्यात्म के साथ-साथ पदार्थविज्ञान का बीज भी वेदों में दिखलाया है।

'वेद में सब सत्य विद्याएँ हैं।' इसके दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक तो यह कि मूल रूप से समस्त सत्य विद्याएँ वेद में है, तथा

मानव कल्याण करने वाला ज्ञान ही सत्य विद्या है, दूसरा यह कि वेद में जो कुछ भी है वह सत्य ही है, वहाँ असत्य का लेशमात्र भी नहीं है। ऋषि का कथन है:- 'वेदा: सर्वविद्याभि: पूर्णा: सन्ति नैव किंचिन्तेषु मिथ्यात्वमस्ति।' अर्थात् वेद सब विद्याओं से पूर्ण हैं उनमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। इस कथन से वेद के मिथ्या अर्थों के आधार पर किये गए आक्षेपों का निराकरण हो जाता है।

ऋषि दयानन्द के अनुसार वेदों पर जो आक्षेप किये जाते हैं, वे वेदों पर नहीं अपितु वेदों के दोषपूर्ण अर्थों पर समझने चाहिएँ। इस दृष्टि से ऋषि ने वेदों के सच्चे अर्थ प्रकाशित करने के लिए ही वेदभाष्य की रचना की है। सत्य की खोज के लिए ही उन्होंने अनेक प्रयास किये हैं। स्पष्ट है कि सत्य के ग्रहण से ही विश्व-कल्याण संभव है।

२ शास्त्र और बौद्धिकता का समन्वय:- जिस समय ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य का कार्य शुरू किया तो आलोचकों ने नाना प्रकार से प्रश्न और शंकाएँ कीं और कहा कि आप नवीन भाष्य कर रहे हैं या पूर्व विद्वानों के द्वारा किये गये (भाष्य) को ही प्रकाशित कर रहे हैं? यदि पूर्व विद्वानों के द्वारा किये गये भाष्य का ही प्रकाश कर रहे हैं तो पिष्टपेषण दोष से युक्त होने के कारण आपका भाष्य किसी को भी ग्राह्य नहीं होगा।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ऋषि ने समाधान करते हुए कहा कि पूर्व आचार्यों (विद्वानों) द्वारा किये गये (भाष्य) को ही प्रकाशित किया जा रहा है, जो पूर्व देवों अर्थात् विद्वानों ने ब्रह्मा से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, जैमिनी पर्यन्त ऋषियों ने ऐतरेय शतपथ आदि भाष्य रचे थे और जो पाणिनी, पंतजलि, यास्क आदि महर्षियों ने वेदांग नामक वेद के व्याख्यान किये थे; उसी प्रकार जैमिनी आदि ने वेद के उपांग नाम से छ: शास्त्र, उपवेद शाखाएं रचीं थी- इनके संग्रह मात्र द्वारा ही सत्य अर्थ को प्रकाशित किया जा रहा है। और यहाँ प्रमाण के बिना कुछ भी नवीन स्वेच्छा से नहीं लिखा जा रहा है। (भा० भू० भाष्य करण०)

इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने प्राचीन शास्त्रों के आधार पर वेदभाष्य की रचना की है। उन्होंने वेद की शाखाओं, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, वेद के अंगों, उपांगों आदि ऋषि रचित ग्रंथों को वेदभाष्य का आधार बनाया है और पदे पदे यह स्वीकार किया है कि वेद में जो कुछ है वह सब बुद्धि संगत ही है। अत: इसकी व्याख्या भी बुद्धि संगत ही होनी चाहिए। 'बुद्धिपूर्वा वाक्कृतिर्वेदे-' निरुक्त के वचनानुसार वेदार्थ को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने तर्क का भी आश्रय लिया है। 'एनं तर्कमृषिं प्रायच्छन्' निरुक्त के इस वचन की व्याख्या के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है:- 'सत्यासत्यविज्ञानेन वेदार्थबोधार्थं चैतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्' - (भा० भू०) अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से वेदार्थ बोध करने के लिए ऋषियों ने इस तर्क रूपी ऋषि को दिया। यह तर्क मंत्रों के अर्थ का विवेक कराने वाला है। (मंत्रार्थ विज्ञान कारकम्।) किन्तु यह भी वास्तविकता है कि केवल तर्क या शुष्क तर्क ऋषि दयानन्द को अभिप्रेत नहीं है। यह तर्क शास्त्राधारित होना चाहिए, बुद्धि संगत होना चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा कि:- 'सब आर्य विद्वानों का सिद्धांत है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त जो तर्क है, वही मनुष्यों के लिए ऋषि है।' (भा० भू० वेदविषय) इसी प्रकार श्रवण मात्र से या तर्क मात्र से इन मंत्रों का पृथक्-पृथक् निर्वचन न करना चाहिए किन्तु प्रकरण के अनुकूल पूर्वापर प्रसंग से ही निर्वचन करना चाहिए।' (वही)

शास्त्र, बुद्धि एवं तर्क के आधार पर वेदों की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द के सामने ऐसे भी शास्त्र आये जो जनता एवं विद्वानों के श्रद्धास्पद थे, वे वेदों के समान ही प्रमाण माने जाते थे। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि लोग तो केवल वेदों के नाम से परिचित थे, वेदों के नाम से उन्ही ग्रंथों के विधान का ग्रहण किया जाता था। परन्तु उनके विधान न तो बुद्धिसंगत थे और न जन-जीवन के लिए कल्याणकारी। ऋषि दयानन्द ने ऐसे अनेक ग्रंथों को देखा और परखा। गंभीरता से विचार करने पर यह भी जान लिया कि वेदोक्त धर्म के प्रचार में ये ग्रंथ ही विघ्न हैं, ये सर्वथा वेद-विरोधी हैं। जैमिनी ऋषि पहले ही घोषणा कर चुके हैं; 'विरोधे त्वनपेक्ष्य स्यात्' (मीमांसा सूत्र १-३-२)

ऐसी स्थिति में ऋषि दयानन्द ने साहस और विवेक के साथ घोषणा कर दी कि जो ईश्वरकृत ग्रंथ है वे ही स्वत: प्रमाण हैं, क्योंकि ईश्वर के कथन में भ्रम आदि दोष नहीं हो सकते। वह सर्वत्र सर्वविद्यायुक्त और सर्वशक्तिमान है। 'ईश्वरोक्तत्वाच्चत्वारो वेदा: स्वत: प्रमाणम्। कुत:? तदुक्तौ भ्रमादिदोषाभावात्, तस्य सर्वज्ञत्वात्, सर्वविद्यावत्त्वात्, सर्वशक्तिमत्त्वाच्च।' (भा०भू० ग्रंथप्रामाण्य) ऋषि ने यह भी बतलाया कि वेदों के व्याख्यान रूप जो ब्राह्मण ग्रंथ है, वे भी जहाँ तक वेद के अनुकूल हैं, वहीं तक प्रमाण हैं। इस प्रकार वेद नाम से प्रसिद्ध वेद शाखाओं के विषय में भी जानना चाहिए। अन्य आर्ष ग्रंथ भी वेदानुकूल होने से ही प्रमाण मानने योग्य हैं (वहीं) और जो ग्रंथ वेदविरोधी हैं, उन्हें भी प्रमाण मानना उचित नहीं। 'ये ग्रंथा: वेदविरोधिनो वर्तन्ते नैव तेषां प्रामाण्यम् स्वीकर्तुं योग्यमस्ति।' (भा० भू०)

इस प्रकार ऋषि ने अपनी सूक्ष्म एवं व्यापक बुद्धि तथा पैने तर्क की कसौटी पर कस कर ही वेदेतर ग्रंथों को प्रमाण कोटि में रखकर उनका यथायोग्य उपयोग किया है।

ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों तथा स्मृतियों के विषय में ऋषि ने इसी दृष्टि से कार्य किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में किये गये वेदार्थ को और अपने बुद्धि संगत लोकहितकारी व्याख्यानों को भी जोड़ दिया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने प्राचीन शास्त्र का यथावत् उपयोग करते हुए वेदों की अपूर्व व्याख्या की है। उसमें शास्त्र और बुद्धि का भली-भांति समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस अपूर्व व्याख्या के लिए उनका प्रमुख साधन है यौगिक प्रक्रिया।

यौगिक प्रक्रिया की प्रधानता:- ऋषि दयानन्द ने यौगिक प्रक्रिया का आश्रय लेकर वेदों को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक सिद्ध किया है। जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है, वेदों में केवल धर्म, कर्म और आध्यात्म ही नहीं अपितु पदार्थ विज्ञान आदि के सम्दर्भ भी दिखलाये गये हैं। उनकी यौगिक प्रक्रिया ब्रा ह्मण ग्रंथों, निरुक्त, व्याकरण आदि के आधार पर प्रतिष्ठित होकर भी अपना विशेष महत्त्व रखती है। निरुक्तकार ने निर्वचन की पद्धति का निरूपण करते हुए स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि अर्थ में स्थित होकर परीक्षा करें । निरुक्तकार ने अपने विविध निर्वचनों से भी यह प्रकट किया है। महाभाष्यकार पंतजलि ने भी कई स्थानों पर यह कहा है कि अर्थ की प्रधानता होती है, शब्दों की नहीं। ऋषि दयानन्द ने भी महाभाष्यकार के आधार पर इस विषय में तीन नियमों का उल्लेख किया जिन्हें यौगिक प्रक्रिया का प्राण कहा जा सकता है :- (१) अर्थ की प्रधानता होती है, विभक्ति की नहीं। (अनेनार्थ प्राधान्यं भवति न विभेक्तिरिति बोध्यम्।) (भा० भू० व्याकरण नियम) (२) अर्थ बोध के लिए ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है। (अर्थ गत्यर्थः शब्द प्रयोगः (महाभाष्य) (३) वेद तथा लोक में बहुत से शब्द एक अर्थ के वाचक होते हैं, और एक शब्द भी बहुत से अर्थों का वाचक होता है। (लौकिक वैदिकेषु शब्देषु सार्वत्रिकः समानोयं नियमः,) (भा० भू०)

इस यौगिक प्रक्रिया का आश्रय लेकर ऋषि दयानन्द ने वेदों को विज्ञान के अनुकूल सिद्ध किया है और अनेक नवीन वैज्ञानिक पदार्थों एवं आविष्कारों का मूल भी वेदों में दिखलाया है। इसी के आधार पर वेद मंत्रों का अर्थ प्रस्तुत करके महीधर आदि के अर्थों का दोष सिद्ध किया है। वेदोक्त धर्म पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देकर अध्यात्म तथा विज्ञान का समन्वय किया है।

यौगिक प्रक्रिया के आधार पर ऋषि ने अनेक भ्रम पूर्ण मन्तव्यों का युक्तियुक्त खण्डन किया है तथा अश्वमेध, गोमेध, नर मेध आदि शब्दों का सत्यार्थप्रकाश के बाहरवें समुल्लास में वास्तविक अर्थ स्पष्ट करते हुए ब्राह्मण ग्रंथों के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं, जैसे- 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' तथा 'अन्नं हि गौः' आदि। यौगिक क्रिया के आधार पर ही वेद के आख्यानों का युक्तिसंगत अर्थ करके यह सिद्ध किया है कि वेद में लौकिक इतिहास नहीं है। ऋषि कहते हैं कि जैसे ब्राह्मण ग्रंथों में मनुष्यों के नाम का उल्लेख करते हुए लौकिक इतिहास है- ऐसे मंत्र भाग में नही है।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपश्य त्र्यायुषम्' आदि वेद मंत्रों में जमदग्नि और कश्यप आदि देहधारी मनुष्यों के नाम नहीं है, अपितु 'चक्षु' को जमदग्नि कहा है और 'प्राण' को कश्यप। 'चक्षुर्वै जमदग्निः' 'कश्यपो वै कर्मः' 'प्राणो वै कूर्मः'। (द्रष्टव्य शतपथ ब्राह्मण) वेदों में लौकिक इतिहास भी नहीं है, दयानन्द कहते हैः- (वेदों के) मंत्र भाग में इतिहास का लेश भी नहीं है, और जो सायणाचार्य आदि ने अपने भाष्यों में जहाँ-जहाँ इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रांति मूलक है। (भाष्यभूमिका वेदसंज्ञा०)

वेदों के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में जो अन्य अनेक मिथ्या धारणाएं हैं, उनका भी इस मान्यता के आधार पर निराकरण किया जा सकता है कि वेद के सभी शब्द यौगिक हैं।

वैदिक प्रयोगों की यह विशेषता दिखलाकर ऋषि दयानन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वस्तुतः वेदों का अर्थ करने के लिए एक भिन्न तथा विशेष मार्ग का अवलम्बन करना होता है, विशिष्ट प्रक्रिया अपनानी होती है उसी के आधार पर वेदार्थ का प्रकाशन संभव है। स्वयं ऋषि ने इसी मार्ग का अवलम्बन कर वेद भाष्य को मानवोपयोगी बनाकर प्रस्तुत किया है।

क्या भारतवर्ष का इतिहास केवल पराजय का इतिहास है?
क्या भारतीय कायर हैं?
क्या बाबर को महाराणा सांगा ने आमंत्रित किया था?
क्या अकबर महान था?
इत्यादि अनेक प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए पढ़िये
राजेशार्य आट्टा की शोधपूर्ण कृति
स्वाभिमान का प्रतीक मेवाड़
मूल्य : १५ रुपये मात्र (डाकखर्च अतिरिक्त)
प्राप्ति स्थान
शांतिधर्मी कार्यालय, जींद-१२६१०२

स्वास्थ्य-चर्चा

सस्ता भी उपयोगी भी है कद्दू

❒आचार्य बालकृष्ण जी

'कद्दू' हमारे घरों में बनाई जाने वाली आम सब्जी है लेकिन फिर भी हम इसका अपनी फेवरेट सब्जी के रूप में उल्लेख नहीं करते। यह बहुत ही स्वास्थ्य वर्धक सब्जी है जिसे हम नजरअंदाज कर देते हैं।

भले ही 'कद्दू' शब्द का प्रयोग व्यंग्यात्मक रूप में किया जाता हो, लेकिन इसका प्रयोग बहुत लाभकारी होता है- स्वाद के रूप में भी और सेहत के लिए भी। प्रकृति ने अपनी इसमें कई तरह के औषधीय गुण समेटे हैं। इसका सेवन स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। इसकी सब्जी में पेट से लेकर दिल तक की कई बीमारियों के इलाज की क्षमता है। जहां यह हृदयरोगियों के लिए बहुत लाभदायक होती है, वहीं कोलेस्ट्रॉल को कम करने में भी सहायक होती है। 'कद्दू' हमारे घरों में बनाई जाने वाली आम सब्जी है लेकिन फिर भी हम इसका अपनी फेवरेट सब्जी के रूप में उल्लेख नहीं करते। यह बहुत ही स्वास्थ्य वर्धक सब्जी है जिसे हम नजरअंदाज कर देते हैं।

भारत में 'कद्दू' की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिन्हें उनके आकार-प्रकार और गूदे के आधार पर मुख्य रूप से सीताफल, चपन 'कद्दू' और विलायती 'कद्दू' के वर्गों में बांटा जाता है। हमारे यहाँ विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर 'कद्दू' की सब्जी और हलवा आदि बनाना-खाना शुभ माना जाता है। उपवास के दिनों में फलाहार के रूप में भी इससे बने विशेष पकवानों का सेवन किया जाता है। लोगों में यह भी गलत धारणा है कि 'कद्दू' मीठा होता है इसलिये इसे मधुमेह रोगी नहीं खा सकते। यह बात बिल्कुल गलत है। शरीर के इन्सुलिन लेवल को बढाना 'कद्दू' का काम होता है।

'कद्दू' में मुख्य रूप से बीटा केरोटीन पाया जाता है, जिससे विटामिन ए मिलता है। पीले और संतरी 'कद्दू' में केरोटीन की मात्रा अपेक्षाकृत ज्यादा होती है। बीटा केरोटीन एंटीऑक्सीडेंट होता है जो शरीर में फ्री रैडिकल से निपटने में मदद करता है। 'कद्दू' ठंडक पहुंचाने वाला होता है। इसे डंठल की ओर से काटकर तलवों पर रगड़ने से शरीर की गर्मी खत्म होती है। 'कद्दू' लंबे समय के बुखार में भी असरकारी होता है। इससे बदन की हरारत या उसका आभास दूर होता है।

'कद्दू' का रस भी सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होता है। यह मूत्रवर्धक होता है और पेट संबंधी गड़बड़ियों में भी लाभकारी रहता है। यह खून में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करने में सहायक होता है और अग्न्याशय को भी सक्रिय करता है। इसी वजह से चिकित्सक मधुमेह के रोगियों को कद्दू के सेवन की सलाह देते हैं।

'कद्दू' के बीज भी बहुत गुणकारी होते हैं। 'कद्दू' व इसके बीज विटामिन सी और ई, आयरन, कैलशियम मैग्नीशियम, फॉसफोरस, पोटैशियम, जिंक, प्रोटीन और फाइबर आदि के भी अच्छे स्रोत होते हैं। यह बलवर्धक होने के साथ-साथ रक्त एवं पेट साफ करता है, पित्त व वायु विकार दूर करता है और मस्तिष्क के लिए भी बहुत फायदेमंद होता है। प्रयोगों में पाया गया है कि 'कद्दू' के छिलके में भी एंटीबैक्टीरिया तत्त्व होता है जो संक्रमण फैलाने वाले जीवाणुओं से रक्षा करता है। शायद इन्हीं खूबियों की वजह से 'कद्दू' को प्राचीन काल से ही गुणों की खान माना जाता रहा है।

'कद्दू' मन को शांति पहुंचाने में भी सहायिक है। 'कद्दू' में कुछ ऐसे मिनरल्स होते हैं जो दिमाग की नसों को आराम पहुंचाते हैं। अगर आपको रिलैक्स होना है तो आप 'कद्दू' खा सकते हैं।

'कद्दू' हृदयरोगियों के लिये अति लाभकारी है। आहार विशेषज्ञों का कहना है कि 'कद्दू' हृदयरोगियों के लिए अत्यंत लाभदायक है। यह कोलेस्ट्राल कम करता है, ठंडक पहुंचाने वाला और मूत्रवर्धक होता है।

'कद्दू' आयरन से भरपूर होता है। कई बार महिलाओं में आयरन की कमी हो जाती है जिससे उन्हें एनीमिया हो जाता है। तो ऐसे में 'कद्दू' सस्ता भी पड़ता है और पौष्टिक भी होता है। 'कद्दू' के बीज भी आयरन, जिंक, पोटेशियम और मैग्नीशियम के अच्छे स्रोत हैं।

'कद्दू' में खूब रेशा यानी फाइबर होता है जिससे पेट साफ रखने में मदद मिलती है।

बाल वाटिका

सम्पादक : सुमेधा

जानते हो!

-आदित्य प्रकाश

❖उल्लू बन्दर दिन भर सोता है और रात में खाता पीता है।
❖न्यू गुएना के निवासी धागे जैसी घास की पत्तियों से दाढ़ी बनाते हैं जिसकी धार आश्चर्यजनक रूप से तेज होती है।
❖स्विट्जरलैंड के राष्ट्रपति का कार्यकाल एक वर्ष का होता है।
❖हाथी का सूंड में चालीस हजार पेशियाँ होती हैं, लेकिन हड्डी एक भी नहीं होती।
❖हमारे फेफड़ों में ३०० अरब नन्हीं नन्हीं रक्त वाहिनियाँ होती हैं, इन्हें आपस में जोड़ दिया जाए तो इनकी लम्बाई एक हजार पांच सौ मील हो जाएगी।
❖हवाई भाषा में सिर्फ बारह अक्षर होते हैं।
❖चींटी दो दिन तक पानी में जीवित रह सकती है।
❖पृथ्वी पर ९७ प्रतिशत पानी नमकीन है।

हास्यम्

-प्रतिष्ठा

❖अनु- ऐसा कौन सा काम है जो बिना मेहनत किए ही हो जाता है?
हरसी- फेल होना।
❖डॉक्टर- बेटा, यह गोली दूध के साथ लेना क्योंकि यह थोड़ी गर्म है।
गोलू- जी, डॉक्टर, गर्म है तो बर्फ के साथ ले लूँ तो--?
❖डाकू-(बन्दूक तानकर) अपना पर्स मेरे हवाले कर दो--
प्रत्यू- यह लो--।
डाकू- कितने मूर्ख हो तुम! मेरी बन्दूक में तो गोली ही नहीं थी। हा हा हा--
प्रत्यू- और मेरे पर्स में भी कहाँ रूपये थे!
❖तीन चींटियाँ बातें कर रही थीं- एक लाल, एक काली और एक सफेद।
लाल से पूछा गया- तुम इतनी लाल क्यों हो?
लाल चींटी- मैं धूप में रहती हूँ, इसलिए लाल हो गई हूँ।
काली से पूछा गया- तुम इतनी काली क्यों हो?
काली चींटी- मैं कीचड़ में रहती हूँ इसलिए काली हूँ।
सफेद चींटी से पूछा गया- तुम सफेद क्यों हो?
सफेद चींटी- यह सब तो बाबा रामदेव की क्रीम का कमाल है।
❖ग्राहक-इस शीशे की क्या गारंटी है?
दुकानदार- इसे सौवीं मंजिल से भी नीचे फैंकोगे तो भी यह निन्यानवे वीं मंजिल तक नहीं टूटेगा।

प्रहेलिका:

❖वह क्या चीज है जो है तो तुम्हारी, पर तुम से ज्यादा दूसरे उसका प्रयोग करते हैं?
❖ऐसी क्या चीज है जिसे तुम दायें हाथ से कभी नहीं पकड़ सकते?
❖बिना बुलाए आती हूँ,
हर कोने में जाती हूँ।
पकड़ न मुझको पाते हो,
मुझ बिन रह नहीं पाते हो।
❖दो पहिए हैं न कोई इंजन
नहीं चाहिए उसको ईंधन।
न तो धुवां है न प्रदूषण,
आम मनुष्य का है यह वाहन।
❖सात दिनों में आता हूँ।
बच्चों के मन भाता हूँ।।
सब करते मेरा इन्तजार,
सब करते हैं मुझसे प्यार।

तुम्हारा नाम, तुम्हारे दायें हाथ की कलाई, हवा, सायकिल, रविवार

विचार कणिका:

❑आस्था गुड्डू

❖ज्ञान प्राप्त करने के लिए खर्च किया गया हर पैसा सबसे ज्यादा लाभ देता है।
❖जिन्दगी की सबसे बड़ी समस्या यही है कि हम बूढ़े बहुत जल्द हो जाते हैं और बुद्धिमान बहुत देर से बनते हैं।
❖अपनी प्रतिभा को कभी मत छिपाओ।
❖अज्ञानी होना शर्म की बात नहीं है। शर्म की बात है -सीखने के लिए तैयार न होना।
❖कल के लिए वह काम कभी मत छोड़ो जो आप आज कर सकते हैं।
❖एक पैसा बचाना ही एक पैसा कमाना है।
❖बुद्धिमान वह है जो कुछ सीखता है, ताकतवर वह है जो इच्छाओं को जीतता है, धनवान वह है जो संतुष्ट है।
❖समय का धन सबसे ज्यादा कीमती है। समय को बरबाद करना सबसे बड़ी फिजूलखर्ची है।

प्रेरक प्रसंग

उपदेश का लाभ

❑प्रतीक सोनी

एक बार एक स्वामी जी भिक्षा माँगते हुए एक घर के सामने खड़े हुए और उन्होंने आवाज लगायी- भिक्षा दे दे माते!!

घर से महिला बाहर आयी। उसने उनकी झोली में भिक्षा डाली और प्रार्थना की- 'महात्माजी, कोई उपदेश दीजिए!'

स्वामीजी बोले- 'आज नहीं, कल दूँगा।' दूसरे दिन स्वामीजी ने पुन: उस घर के सामने आवाज दी- 'भिक्षा दे दे माते!!'

उस घर की स्त्री ने उस दिन खीर बनायी थी। जिसमे बादाम-पिस्ते भी डाले थे। वह खीर का कटोरा लेकर बाहर आयी। स्वामी जी ने अपना कमंडल आगे कर दिया।

वह स्त्री जब खीर डालने लगी तो उसने देखा कि कमंडल में गोबर और कूड़ा भरा पड़ा है।उसके हाथ ठिठक गए। वह बोली- 'महाराज! यह कमंडल तो गन्दा है।'

स्वामीजी बोले- 'हाँ, गन्दा तो है, किन्तु खीर इसमें डाल दो।'

स्त्री बोली- 'नहीं महाराज, तब तो खीर ख़राब हो जायेगी। दीजिये यह कमंडल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूँ।' स्वामीजी ने कमण्डल दे दिया। स्त्री ने कमण्डल साफ करके खीर डाली और महात्मा जी को दे दिया। स्वामी जी भिक्षा लेकर चलने लगे तो स्त्री ने पुकारा- महाराज, उपदेश? स्वामी जी ठिठक गए। बोले- माता, अभी दिया तो उपदेश। माता ने विनम्रता से कहा- महाराज, मुझे कुछ समझ नहीं आया। स्वामीजी ने मृदु वाणी में समझाया- जब यह कमंडल साफ़ हो जायेगा, तभी खीर डालोगी। मेरा उपदेश भी यही है। मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा-कचरा और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है, तब तक उपदेशामृत का कोई लाभ न होगा। यदि उपदेश का लाभ उठाना है, तो प्रथम अपने मन को शुद्ध करना चाहिए, कुसंस्कारों का त्याग करना चाहिए, तभी सच्चे सुख और आनन्द की प्राप्ति होगी।

राजा की उदारता

❑वरुण पहल

बंगाल में गुष्करा एक छोटा सा स्टेशन है। एक दिन रेलगाड़ी आकर स्टेशन पर खड़ी हुई। उतरने वाले झटपट उतरने लगे और चढ़ने वाले दौड़-दौड़कर गाड़ी में चढ़ने लगे। एक बुढ़िया भी गाड़ी से उतरी। उसने अपनी गठरी खिसकाकर डिब्बे के दरवाजे तक तो ले आई थी, किन्तु बहुत चेष्टा करके भी उतार नहीं पा रही थी।

कई लोग गठरी को लाँघते-- हुए डिब्बे में चढ़े और डिब्बे से उतरे। बुढ़िया ने कई लोगों से बड़ी दीनता से प्रार्थना की कि उसकी गठरी उसके सिर पर उठाकर रख दें, किन्तु किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। लोग ऐसे चले जाते थे, मानो बहिरे हों। गाड़ी छूटने का समय हो गया। बेचारी बुढ़िया इधर-उधर बड़ी व्याकुलता से देखने लगी। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

एकाएक प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठे एक सज्जन की दृष्टि बुढ़िया पर पड़ी। गाड़ी छूटने की घण्टी बज चुकी थी किन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। अपने डिब्बे से वे शीघ्रता से उतरे और बुढ़िया की गठरी उठाकर उन्होंने सिर पर रख दी। वहाँ से बड़ी शीघ्रता से अपने डिब्बे में जाकर जैसे ही बैठे गाड़ी चल पड़ी। बुढ़िया सिर पर गठरी लिये उन्हें आर्शीवाद दे रही थी-बेटा! भगवान् तेरा भला करें।

जानते हो कि बुढ़िया की गठरी उठा देने वाले सज्जन कौन थे? वे कासिम बाजार के राजा मणीचन्द्र नन्दी थे जो उस गाड़ी से कलकत्ते जा रहे थे। सचमुच वे राजा थे, क्योंकि सच्चा राजा वह नहीं है जो धनी है या बड़ी सेना रखता है। सच्चा राजा वह है जिसका हृदय उदार है, जो दीन-दुखियों और दुर्बलों की सहायता कर सकता है। ऐसे सच्चे राजा बनने का सबको अधिकार है। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

सर्वप्रथम जानें दृश्यमान् जगत्

हमारे स्वाध्यायशील जिज्ञासु पाठक **श्री रमेश बंसल, देवली (रा०) मो० ९४१४४३४२८०** ने 'वेदस्वाध्याय' पुस्तक के स्वाध्याय के आधार पर अपने विचार-सार प्रेषित किए हैं, जिसके व्याख्याकार डॉ० स्वामी देवव्रत सरस्वती हैं। (प्रधान सेनापति सार्वदेशिक आर्य वीर दल) पाठकों के लाभार्थ ये विचार प्रस्तुत हैं। हाँ, आप आजकल किस ग्रंथ का स्वाध्याय कर रहे हैं, उसका सार आप भी प्रकाशनार्थ भेजें, ताकि पाठक भी उस ग्रंथ का लाभ उठा सकें। पुस्तक प्राप्ति स्थान का पूरा पता भी लिखें तो उत्तम रहेगा। स्वामी जी की यह पुस्तक ११९, गौतम नगर, नई दिल्ली-४९ से प्राप्त की जा सकती है।

-सम्पादक

१ मूल सत्ता ईश्वर : आध्यात्मिक जिज्ञासु आजीवन प्यासे ही प्रायः रहते हैं। तृप्त तो वे अव्यय ब्रह्मप्राप्ति होने पर ही होते हैं। सामान्यतः जो संसार दिखाई पड़ता है, वह मनुष्य थोड़ा थोड़ा ज्ञान पाते-पाते समझने लगता है कि ईश्वर ने यह पहाड़, नदी, जंगल, पशु, पक्षी सहित समस्त जीवों की रचना की है। क्यों-कैसे-कब आदि प्रश्नों के उत्तर ढूँढता रहता है आजीवन। ईश्वर कौन है? उत्तर-एक सर्वोच्च गुणात्मक अदृश्य-सत्ता' सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की, जिसका विवरण आर्यसमाज के दूसरे नियम में यों है- ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

ईश्वर अदृश्यमान सत्ता है, परन्तु उसकी कृति दृश्यमान जगत् है।

२ 'जगत' का शाब्दिक अर्थ- शब्द 'जगत्' का विच्छेद हुआ 'ज'+'गत'-गति से जन्मा हुआ। पूरी सृष्टि ही गतिशील है तो सभी कुछ गतिमान है। गीता के श्लोक ६१वें, अध्याय १८, मोक्ष सन्यास योग में तो रोचक तरीके से प्राणियों को शरीर रूपी यन्त्र में चढ़ा कर घुमाना बताया है। यथा-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।

३ 'धुरी', पूरी गतिशीलता की है आकर्षण- कोई भी पदार्थ, बिना आधार के आकाश (अर्थात् खाली स्थान) में स्थिर नहीं रह सकता है। हाँ, गतिमान पदार्थ तो या परस्पर आकर्षण शक्ति से संतुलित हुए पदार्थ स्थिर या गतिशील रह सकते हैं। सूर्य चन्द्रमा, पृथ्वी, ग्रह-उपग्रह, आकाश गंगाएं सब अनन्त आकाश में, आपोआप तयशुदा सन्तुलित होते हुए, एक दूजे के आकर्षणों को संतुलित करते-करते, स्थित/गतिशील दिखते हैं।

अतः भौतिक विज्ञान तो समस्त दृश्यमान की केन्द्रीभूत 'धुरी' आकर्षण को मानता है।

४ दृश्यमान जगत् की संरचना कैसे हुई होगी?- विज्ञान के अनुसार सृष्टि की रचना 'नेब्युला' याने 'प्रकाशमान आदि तत्व' से हुई है। इसे वेद में 'हिरण्यगर्भः' कहा है- 'हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे'- प्रारम्भ में स्वर्ण जैसी चमक वाला पदार्थ अण्डाकार रूप में था। कालान्तर में इस ब्रह्माण्ड रूप अण्डे का विस्फोट होकर इसके दो भाग बन गये। उपर वाले भाग से सूर्य और दूसरे नक्षत्रों का निर्माण हुआ तथा नीचे वाले भाग से पृथ्वी की रचना हुई।

दूसरी मान्यता के अनुसार कोई शक्तिशाली पिण्ड सूर्य के समीप से गुजरा। उस पिण्ड की आकर्षण शक्ति से सूर्य में ज्वार उठ खड़ा हुआ। उस पिण्ड का कुछ द्रव्य उससे अलग होकर इसके चारों और घूमने लगा जो पृथिवी कहलाया। फिर इसी का कुछ भाग टूट कर चन्द्रमा बन गया। ऐसे ही सूर्य से पृथक् हो मंगल, बुध, शुक्र, शनि आदि ग्रहों की रचना हुई।

इनमें सही मत कौन सा है यह निश्चितरूपेण नहीं कहा जा सकता। परन्तु इनता निश्चित है कि सृष्टि रचना के पीछे किसी शक्तिशाली 'चेतन सत्ता' का अस्तित्व अवश्य है, जो इन सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके इन्हें धारण भी कर रही है। यह सत्ता क्या ईश्वर नहीं कही

आज प्रायः सभी ने अपना लक्ष्य ''लौकिक सुख'' (तीन ऐषणाओं: पुत्र-वित्त-लोक) को पूर्ण करना बना लिया है। ईश्वरानुभूति को आडम्बर-छल-कपट-झूठ समझ लिया है। विपरीत लक्ष्य से पाँच इन्द्रियों के भोग कर्मों में मनुष्य लिप्त हो चुका है।

जा सकती?

आधुनिक भूगोलवेत्ताओं की सुनते हैं। वे यह तो बताते हैं कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती एक वर्ष में एक चक्कर अण्डाकार कक्षा में पूरा कर लेती है। इससे ऋतुएँ बनती हैं। ऐसे ही पृथिवी लट्टू की तरह अपनी कीली पर चौबीस घंटों में एक बार घूमती हुई ही अण्डाकार कक्षा का चक्कर पूरा करती है और हम पृथिवीवासियों को दिन-रात प्रति २४ घंटे दिखाई देते हैं। यहाँ पर सूर्य को स्थिर समझना होगा पृथिवी के सापेक्ष में। तब ही तो पृथिवी अपनी कक्षा की परिधि बनाये रख सकती है। स्थिर सूर्य के आकर्षण में बाँधे कौन सूर्य के चारों ओर घुमा रहा है और क्यों पृथिवी अपनी कीली पर सूर्य की ओर 23½ डिग्री झुकी झूम रही है। यदि झुकी न होती तो ऋतुएँ बनती नहीं पूरी पृथिवी पर वर्ष में। यह नियंत्रणात्मक नियोजक सृष्टि रचना में क्रियाशील है।

एक आश्चर्यजनक तथ्य ज्ञात हुआ है वैज्ञानिकों को कि आकाश में एक नेब्यूला १५००० मील प्रति सैकिंड गति से पृथिवी से दूर भागा जा रहा है। अर्थात् ब्रह्माण्ड अपने केन्द्र से दूर होता हुआ फैलता भी जा रहा है। कभी लौटने भी लगेगा इसी गति से तो? यह सब आश्चर्यजनक दृश्यमान जगत को जानकर किसी सर्वोच्च सत्ता का अस्तित्व मानना मजबूरी हो जाती है। एक अध्याय नं० २६, पुस्तक जो लेखक ने आलेख के प्रारम्भ में पूर्व टिप्पणी में उल्लेखित की है, उसके पृष्ठांक ५१-५२ पर ऋग्वेद २/१५/२ की व्याख्या की है। उसी के आधार पर यह आलेख लिखा जा रहा है। अन्त में उस सत्ता की महत्ता व सृष्टि रचना का प्रयोजन भी लिखा है। यथा-मंत्र है-ऋ०२/१५/२

अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।

अर्थात् हे मनुष्यो! बांस के खम्भों के बिना ही जो बढ़ते हुए, फैले हुए द्युलोक को स्थिर करता है, द्युलोक-पृथिवी-अन्तरिक्ष को सभी ओर से प्राप्त होता है, वह परमेश्वर पृथिवी को धारण कर रहा है और उत्पन्न हुए जगत् में आनन्द के निमित्त उक्त कर्मों को विस्तारित करता है। इन सबको परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर क्रम से करता है, वह तुम लोगों के लिये उपासनीय है।

५ निष्कर्षतः सृष्टि रचना के तीन प्रयोजन-

ईश्वर ने सृष्टि रचना तीन प्रयोजनों हेतु की है :-

१- अपनी सामर्थ्य की सार्थकता हेतु। अन्यथा ईश्वर को कोई जान ही न पाता।

२- जीवों को कर्मानुसार फल देने हेतु। बिना सृष्टि कर्म फल भोगे ही नहीं जाते जीवों के द्वारा।

३- ईश्वर चाहता है कि प्रत्येक जीव निष्काम कर्म करके मुक्ति सुख भोगे दीर्घावधि के लिए। आनन्द में रहे, सुख में नहीं। भक्ति रसपान करता रहे।

७-वर्तमान में दृश्यमान जगत है कैसा?

वेद-प्रार्थना नामक अस्सी पृष्ठों की एक लघु पुस्तिका, प्रत्येक तारीख को एक वेदमंत्र का स्वाध्याय करने हेतु ३१ मंत्रों की व्याख्या सहित मात्र रुपए दस प्रति के मूल्य से उपलब्ध है। मुख्य वितरक : आर्य रणसिंह यादव के द्वारा। पुस्तक के लेखक हैं-ज्ञानेश्वरार्य : दर्शनाचार्य एम० कॉम वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन रोजड़, पोस्ट ऑफिस सागपुर, जिला साबरकांठा (गुजरात)
फोन नं० ०२७७०-२९१५५५

आज प्रायः सभी ने अपना लक्ष्य ''लौकिक सुख'' (तीन ऐषणाओं: पुत्र-वित्त-लोक) को पूर्ण करना बना लिया है। ईश्वरानुभूति को आडम्बर-छल-कपट-झूठ समझ लिया है। विपरीत लक्ष्य से पाँच इन्द्रियों के भोग कर्मों में मनुष्य लिप्त हो चुका है। भाई-भाई, पति-पत्नी, भाई-बहिन तो क्या माता-पिता तक अब रिश्तेदारों से भी परे माने जा रहे हैं। पत्नी और पति परस्पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने को साथ-साथ रह रहे हैं। परिवार केवल पति और पत्नी को ही कहने लग गये हैं। शेष पराये हैं, मेहमान बनकर आयें तो ठीक वर्ना---। समाज की दशा तो रोजाना समाचार पत्र बता रहे हैं। राज्य के कर्णधार अब केवल 'कुर्सी बचाओ' या 'कुर्सी छीनो' कार्यों में लिप्त हैं। भ्रष्टाचार-अनैतिकता-दुराचार की सीमाएं मिटा दी गई हैं। शासन निर्लज्ज हो गया है। शिक्षण संस्थान या तो व्यापारिक संस्थान हो चुके हैं या कहो औद्योगिक संस्थान बन गये हैं। देश का देश दुश्मन है। 'चरित्र' शब्द का अर्थ हर कोई भूल चुका है। मर्यादा-करुणा-कृतज्ञता- अहिंसा-सत्य और ईमान तो शब्दकोशों में लिखे हैं। अर्थ कोई नहीं बता सकता है। टी०वी०, मोबाईल, लेपटॉप और कम्प्यूटर्स अब पुस्तकों से ज्यादा हो रहे हैं।

सामान्य बुद्धि वर्ग अधिकाधिक धन संग्रह येन-केन-प्रकारेण कर रहा है ताकि ऐश्वर्य-विलास के साधन क्रय करके समस्त दुखों को दूर कर डालें। यह मिथ्या धारणा क्या कर डालेगी सन् २०२५ ईस्वी तक? लेखक आगामी पीढ़ी की मंगल कामनाएँ ईश्वर से ही कर रहा है। विवेक लुप्त हो गया है सभी प्रोढ़ों का, कि वे क्या करें।

ऐसी है वर्तमान में दृश्यमान जगत् में मानव की स्थिति कि महात्मा दुर्लभ हो चुके हैं।

बीकानेर में मनाया गया नव सवंत्सरोत्सव

महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर आर्यसमाज में आयोजित नव संवत् व आर्यसमाज स्थापना दिवस समारोह में मुख्य अतिथि स्वतंत्रता सेनानी स्वामी कर्मवेश जी ने कहा कि संसार को देने के लिए और मानवमात्र के कल्याण के लिए आर्यसमाज के कार्य और विचार अद्वितीय हैं। अध्यक्षीय उद्‌बोधन में आचार्य शिवकुमार शास्त्री ने कहा कि भारतीय नव संवत्सर की अपेक्षा Happy New Year के जलवे हमारे स्वाभिमान पर एक कलंक है। कार्यक्रम प्रातः यज्ञ से आरम्भ हुआ। महाराष्ट्र से पधारे डॉ० बसंत कुमार, उदय शंकर व्यास, डॉ० मञ्जू गुप्ता ने नव संवत्सर की तात्त्विक व्याख्या प्रस्तुत की। रामनरेश सोनी, सरदारभाई ने कविता पाठ किया। विशिष्ट समाजसेवियों वानप्रस्थी पूर्णाराम, छत्तरगढ़ के श्री हरिकिशन जोशी तथा श्री गंगाराम का अभिनन्दन सांसद श्री अर्जुनराम मेघवाल द्वारा किया गया। श्री अर्जुनराम मेघवाल सांसद की श्रेष्ठ कार्यों के लिए सराहना की गई, और सीकर से स्वामी सुमेधानन्द जी को भारी मतों से जिताने की अपील की गई। मुख्य यजमान श्री अर्पित सोनी, संजय आर्य, किशनाराम आर्य सपत्नीक थे। कार्यक्रम का संचालन मंत्री महेश सोनी ने किया। समारोह में परमानन्द बस्ती, इंदिरा कालोनी, पवनपुरी, मुक्ताप्रसाद कालोनी, बीकानेर, कोलायत, पलाना, सियाना, गजनेर, छत्तरगढ़ एवं गाढ़वाला के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। अन्त में प्रीतिभोज का आयोजन भी किया गया।

–महेश सोनी, मंत्री

जंगीगंज (भदोही) का वार्षिकोत्सव संपन्न

4 से 7 मार्च 2014 तक आर्यसमाज जंगीगंज का वार्षिकोत्सव धूम धाम से मनाया गया। आर्य विद्या मंदिर के प्राचार्य श्री बालगोविन्द शास्त्री जी के संयोजकत्व में छात्र छात्राओं के साथ 4 मार्च को एक आकर्षक शोभा यात्रा गाँव के मुख्य मार्गों से होती हुई निकाली गई। स्वामी राजेन्द्र योगी (मिर्जापुर) प्रातः योगाभ्यास करवाते थे और स्वास्थ्य सूत्र देते थे। 9 से 12 तक यज्ञ सत्र में व्याख्यान भजन उपदेश होते थे। दोपहर 2 से 5 व रात्रि 7 से 10 तक तृतीय सत्र होता था। गौरक्षा, राष्ट्र रक्षा व समाज सुधार, कुरीति निवारण व वेद सम्मेलन आदि विषयों पर सुयोग्य विद्वानों ने अपने सारगर्भित विचार रखे। सर्वश्री स्वामी केवलानंद सरस्वती जी अलीगढ़, आचार्य आनंद पुरुषार्थी जी होशंगाबाद, महात्मा सत्यमुनि जी (भजनोपदेशक) मिर्जापुर का आगमन इस उत्सव में हुआ। कुछ निकटस्थ मनीषियों ने आकर न केवल उपदेश प्रदान किया अपितु कार्यक्रम की शोभा भी बढ़ाई जिनमें पूर्व उच्च शिक्षा सलाहकार डॉ0 चन्द्रविजय चतुर्वेदी एवं डॉ0 अशोक मिश्र, डॉ0 विद्याशंकर त्रिपाठी, डॉ0 बाबूनाथ शुक्ल, डॉ0 भारतेंदु द्विवेदी जी (ज्ञानपुर) आदि प्रमुख थे। इतने छोटे पिछड़े इलाके में विद्वानों का आना चर्चा का विषय रहा। वर्षों से एक या दो ही यजमान यज्ञ में बमुश्किल आ पाते थे पर यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य श्री आनंद पुरुषार्थी जी ने अंतिम दिन नौ यज्ञ वेदियों पर अनेकानेक दम्पतियों को आमंत्रित कर नयनाभिराम दृश्य उपस्थित किया। –राजपति गुप्त मंत्री, आर्यसमाज

ओ३म्

योग अपनाओ **रोग भगाओ!**

सुखी जीवन जीने की उत्तम कला

योग व प्राकृतिक चिकित्सा शिविर लगवाने के लिए सम्पर्क करें

योगाचार्य सूर्यदेव आर्य

आर्य युवा रत्न अवार्ड से सम्मानित

राष्ट्रीय योग प्रशिक्षक, फर्स्ट एड लेक्चरर, प्रभाकर, बी एड, एन० डी० डी० वाई०, डी० वाई० एन०, डी० स्वास्थ्य संरक्षण (हैल्थ मैनेजमेंट) मुख्य प्रशिक्षक : केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् हरियाणा

सम्पर्क : योग सदन, नजदीक महादेव पैट्रोल पम्प, उधमसिंह मार्ग, कृष्णा कालोनी, जींद–१२६१०२
मो० ९४१६६ १५५३६, ९४१६७ १५५३७

बाबा साहब- पृष्ठ १२ का शेष

हमारे प्रति व्यवहार के बारे में जानकारी रखता है वह दूसरे देशों के हमारे प्रति व्यवहार में हो रहे अचानक परिवर्तन से अच्छी प्रकार से अवगत होगा। १५ अगस्त १९४७ को जब हम स्वतन्त्र हुए तब हमारा बुरा चाहने वाला कोई भी देश नहीं था। दुनिया के सभी देश हमारे मित्र थे। केवल चार वर्ष के अन्दर सभी हमको छोड़कर चले गये हैं। आज हमारा कोई भी मित्र शेष नहीं रह गया है। हमने स्वयं अपने आपको दूर कर लिया है। हम आज नितांत अकेले हैं, इतने अकेले कि यूएनओ के अन्दर हमारे प्रस्तावों का अनुमोदन करने वाला एक भी देश नहीं है।

तिब्बत पर चीनी अधिकार के परिणाम भंयकर होंगे

चीन ने १९४९ के बाद से ही तिब्बत पर अपना अधिकार जमा लिया। भारत शांत बना रहा। तिब्बत की दर्दनाक अपील पर भी भारत ने सहायता का हाथ नहीं बढ़ाया और न ही अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों को तिब्बत की सहायता हेतु आने दिया। डॉ० अम्बेडकर कहते हैं- ल्हासा पर चीनी अधिकार की अनुमति देकर प्रधानमंत्री जी ने चीनी सीमाओं को हमारी सीमाओं से मिलाने में बड़ा सहयोग किया है। इन सभी बातों को देखने से मेरे को यह लगता है कि यदि आज भले ही न हो किन्तु भविष्य में भारत उनके सामने आक्रमण के लिए खुला पड़ा है और वे अवश्य ही इस पर अधिकार के लिए आगे बढ़ेंगे क्योंकि उनकी वृत्ति ही आक्रमणकारी है।

जनसंख्या की पूर्ण अदला बदली हो

मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान का विषय आते ही डॉ० अम्बेडकर ने इस समस्या पर विचार किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दु और मुसलमानों के मध्य एकता स्थापित करने वाले तत्त्व बहुत कम हैं। उनमें आपस में वैमनस्य और द्वेष अधिक है, अतः वे कभी भी मिलकर नहीं रह सकेंगे। अतः उनका मत था कि यदि पाकिस्तान बनाना ही पड़ता है तो हिन्दु और मुसलमान पूर्णतया अलग-अलग हो जायें, वही ठीक रहेगा।

हिन्दू समाज को देन

डॉ० साहब ने कम्युनिस्टों के विचार एवं कार्य प्रणाली को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया और भारत के इस वर्ग में (जो कि हिंसक आंदोलन के लिए योग्यतम आधार हो सकता था) कम्युनिस्टों के प्रति किसी भी प्रकार का आकर्षण उत्पन्न नहीं होने दिया और प्रयासपूर्वक कम्युनिज्म से उन्हें दूर बनाये रखा। हिन्दु समाज की जड़ता और असंवेदनशील मानसिकता को देखकर डॉ० साहब हिन्दु धर्म के नेतृत्व को एक झटका देकर नींद से उठाना भी चाहते थे। इस कारण, सन् १९३५ में उन्होंने घोषणा की कि वे हिन्दु धर्म में रहना नहीं चाहते। मृत्यु के पूर्व ही वे निश्चय कर लेंगे कि किस धर्म में उनकी मृत्यु हो। ईसाईयत में जातिविहीन समाज, वहाँ की सेवा भावना, विश्व में समृद्ध राष्ट्रों की तालिका, शिक्षित एवं प्रतिष्ठित ईसाई समाज के साथ अनुसूचित वर्गों का जुड़ना आदि अनेक लुभावनी बातों से डॉ० अम्बेडकर को लगातार आकर्षित किया जा रहा था, किन्तु डॉ० साहब ईसाइयत को बहुत निकट से देख चुके थे।

ईसाइयत की असहिष्णु मानसिकता, यहूदियों और इस्लाम के साथ उनकी शत्रुता का इतिहास तथा विश्वभर में गैर ईसाई समाज पर ईसाइयों के द्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचारों के सैकड़ों प्रसंगों का उन्होंने अध्ययन किया हुआ था। भारतवर्ष में भी जो लोग अभी तक ईसाई हो गये थे, उनकी स्थिति को देखकर वे बहुत दुखी थे। वे ईसाई मत से मतान्तरित हिन्दुओं को पूछते थे कि 'तुम्हें वहाँ (ईसाई मत स्वीकार करके) क्या मिला है? क्यों ईसाई बने थे तुम? क्या वहाँ जाकर तुम्हारा स्तर सुधर गया है?' डॉ० साहब ईसाई मत से मतान्तरित लोगों से पूछते हैं- वे अस्पृश्य लोग जो ईसाई बने थे, क्या अब स्पृश्यों के स्तर पर आ गये हैं? क्या अस्पृश्य और स्पृश्य जो भी ईसाई बने थे, अब जाति व्यवस्था को पूरी तरह छोड़ चुके हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर भारत में ईसाई मत को मानने वालों को देना चाहिए।

वे यह भी जानते थे कि इस्लाम यहाँ पर अन्य मतावलम्बियों के साथ सदैव से शत्रुता का ही व्यवहार करता चला आ रहा है। अनुसूचित वर्ग के हिन्दू भी यदि मुसलमान बन गये तो सारे देश के लिए यह एक गंभीर खतरा हो जायेगा। अतः उन्होंने इस्लाम स्वीकार करने का आग्रह करने वाले सभी संदेशवाहकों को वापस कर दिया। वे किसी भी कीमत पर देश में कहीं पर भी अनुसूचित वर्ग के हिन्दुओं को मुसलमान बनने देने को तैयार नहीं थे। वे आदि से अन्त तक भारतीय थे। यहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों तथा महान् जीवन दर्शन में उनकी गहरी आस्था थी। ढोंग, पाखण्ड, अमानवीय परंपराओं तथा विकृत मान्यताओं के विरुद्ध जीवन भर संघर्ष करते रहे लेकिन, उनका कोई शत्रु नहीं था। समाज में मानवीय दर्शन की पुनर्स्थापना में सहयोग करने वाले सभी उनके मित्र थे। विपरीत परिस्थितियों के कारण उन्होंने कभी हार नहीं मानी और करोड़ों लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने में वे सफल रहे।

साभार : पाञ्चजन्य

वेदों में व्यक्तिवाद व- पृष्ठ १५ का शेष

यह ५ नियमों में रखा गया है और केवल इसी से समाधिसिद्धि संभव है। यह भी योगदर्शन में बतलाया गया है। दूसरे पाद का ४५ वां सूत्र है- 'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।।' ईश्वर प्रणिधान का यह भाव है कि साधक अपना शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा सब कुछ ईश्वर को समर्पण कर देवे। यह भक्तियोग की चरम सीमा है। वास्तव में यदि कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व तथा आत्मा भी पूर्ण रूप से ईश्वर के अर्पण कर देवे तो फिर समाधि सिद्धि में तथा मोक्ष प्राप्ति में भी क्या कमी रह सकती है।

समाजधर्म व व्यक्तिधर्म का समन्वय

व्यक्तिधर्म व समाजधर्म की व्याख्या करके मैं फिर यजुर्वेद के उन ३ मंत्रों को दुहराता हूँ जिनका शब्दार्थ मात्र ऊपर पैरा में दिया गया था- पहला मंत्र यह है-

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ संभूत्यां रताः।।४०/९।।

अर्थ- वे लोग घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं, जो केवल व्यक्ति धर्म का पालन करते हैं। उससे अधिक अंधकार में वे गिरते हैं जो केवल समाजधर्म में रत हैं। ये दूसरा पद ठीक ही है क्योंकि व्यक्तिधर्म का स्थान सबसे ऊँचा होना चाहिए, जिसके पालन के बिना मनुष्य का जन्म ही व्यर्थ हो जाता है। दूसरा मंत्र यह है-

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।। ४०/१०।।

अर्थ- समाजधर्म का अन्य फल बतलाया गया है और व्यक्तिधर्म का अन्य ही फल कहा गया है।ऐसा हमने उन ऋषियों से सुना है जो हमको उसकी व्याख्या करते हैं। जैसा ऊपर वर्णन किया गया- समाज धर्म के पालन का फल यह है कि मनुष्य अपने उन कर्त्तव्यों को पूरा करे जो समाज की ओर होते हैं। और व्यक्ति धर्म के पालन का फल उन कर्त्तव्यों को पूरा करना है, जो अपनी ओर होते हैं। तीसरा मंत्र है-

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।११।।

अर्थ- जो व्यक्ति समाजधर्म को और व्यक्तिधर्म को, दोनों को एक साथ जानता है, अर्थात् दोनों का साथ-साथ पालन करता है, वह व्यक्ति धर्म से मृत्यु को पार करके समाजधर्म से अमर हो जाता है। इस सबका सारांश यह है कि व्यक्ति धर्म व समाजधर्म में कोई विरोध नहीं है, किन्तु वे एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का एक साथ पालन करने से मनुष्य वास्तव में पूरा सदाचारी होता है और अपने जीवन को सफल करके मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के जो १० नियम बनाये उनमें दशवें नियम का यही भाव है जिसकी ऊपर व्याख्या की गई। वह नियम इस प्रकार है-

'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।'

ऊपर लिखे मंत्रों में जो उपदेश दिया गया, वह केवल राजनैतिक व्यवहार के लिए नहीं, किन्तु सर्वधर्म के लिये है। राजनीति भी उसका एक अंग है। वैशेषिक दर्शन में धर्म का यह लक्षण किया गया है- यतोभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।। जिससे अभ्युदय अर्थात् सांसारिक सुख व समृद्धि हो और मोक्ष की भी सिद्धि हो, वह धर्म है। तीसरे मंत्र में अमृतत्व की प्राप्ति की ओर निर्देश है, वह निःश्रेयस् सिद्धि है। गत विश्वव्यापी युद्धों के कारण जो भविष्य के लिए संसार भर में पूर्ण शान्ति स्थापन करने का यत्न किया जाता है, वह अभ्युदय के अन्तर्गत है।

दीप प्रकाशन

(वैदिक साहित्य के प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

शांतिधर्मी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य के लिए व शांतिधर्मी की वार्षिक, आजीवन सदस्यता के लिए भी संपर्क कर सकते हैं।

दीपचन्द आर्य

मोबाईल-94161 94371

मिलने का स्थान-
आर्यसमाज घंटाघर, भिवानी

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक चन्द्रभानु आर्य द्वारा अपने स्वामित्व में, ऑटोमैटिक ऑफसैट प्रैस रोहतक से छपवाकर, कार्यालय शान्तिधर्मी ७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक), जीन्द-१२६ १०२ (हरि०) से २४-०३-२०१४ को प्रकाशित।

।।ओ३म्।।

स्वामी भीष्म जी महाराज के शिष्य उत्तर भारत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक

पं० चन्द्रभान आर्य

की चुनी हुई रचनाओं का संकलन

(हरियाणा साहित्य अकादमी के सौजन्य से प्रकाशित)

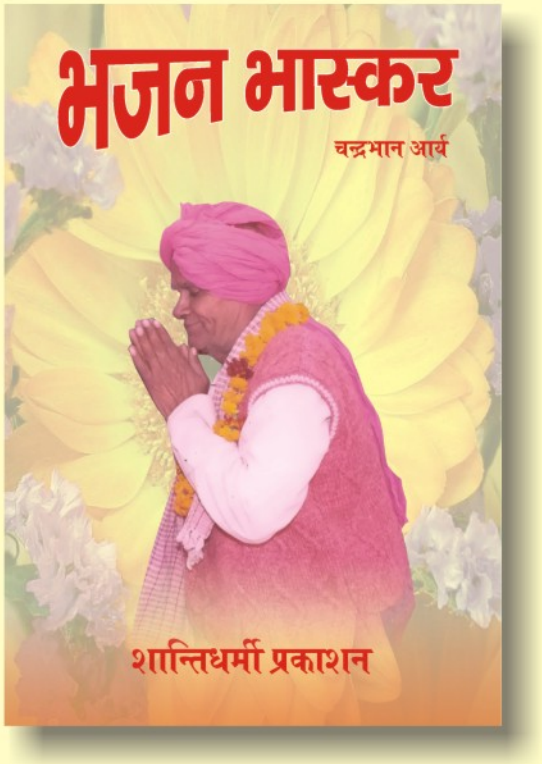

भजन भास्कर

❖भक्ति ❖प्रेरणा ❖शौर्य ❖नारी, चार सर्गों में विभक्त

पृष्ठ : 98, मूल्य : ₹80 (अस्सी रुपये) केवल
पंजीकृत डाक से मंगवाने के लिए मूल्य अग्रिम भेजें।

प्राप्ति स्थान

शांतिधर्मी प्रकाशन
756/3 आदर्श नगर सुभाष चौक जींद-126102 (हरयाणा)
दूरभाष : 80596 64340, 94162 53826

R.N.I. No. 70866/99 शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक (अप्रैल, २०१४) P.R. No. : PKL 150-A/2014-16

ओ३म्

शांतिधर्मी एक अद्वितीय पत्रिका है

इसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये स्वस्थ और सुरूचिपूर्ण सामग्री होती है।

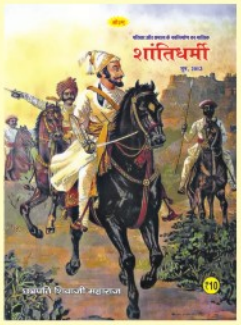

- शांतिधर्मी में धर्म-दर्शन के रहस्य, राष्ट्र व समाज की ज्वलंत समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों के श्रेष्ठ विचार होते हैं।
- शांतिधर्मी भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक दिखाता है।
- शांतिधर्मी वह मार्ग दिखाता है, जिसे पाने के लिये लोग भटक रहे हैं। परिवार में समाज में सह-अस्तित्व व अन्तरात्मा में सुख शांति का संदेशवाहक है।

- शांतिधर्मी उस अध्यात्म का प्रचार करता है-जिसे अपनाने में देश-काल, जाति, मजहब, सम्प्रदाय की सीमाएँ आड़े नहीं आतीं। यह सच्चे ईश्वरीय ज्ञान का प्रचारक है।
- शांतिधर्मी स्वाध्याय भी है और स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी।
- शांतिधर्मी प्रत्येक श्रेष्ठ-धार्मिक-राष्ट्रप्रेमी-मानवतावादी-व्यक्ति के लिये एक विचार-सूत्र है। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवार का आभूषण है।

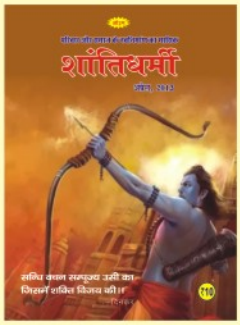

शांतिधर्मी पढ़िये-

अपने प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति सर्वांगीण दायित्वों को जानिये।

जीवन के जटिल व गूढ़ रहस्यों को सहज ही सुलझाईये।

शान्तिधर्मी कार्यालय

756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक)

जीन्द-126102 (हरियाणा)

मो. 09416253826 E-mail : shantidharmijind@gmail.com